ISBN 81-237-1300-2

पहला संस्करण : 1995 (शक 1916)

The World of Turtles and Crocodiles *(Hindi)*

रु. 7.50

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
ए-5 ग्रीन पार्क, नयी दिल्ली द्वारा प्रकाशित
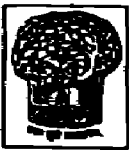
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

नेहरू बाल पुस्तकालय

कछुए और मगर

इंद्रनील दास तथा ज़ई और रॉम व्हिटेकर

छायाचित्र : **रॉम व्हिटेकर** *आरेख* : **इंद्रनील दास**

अनुवाद : **हरसरन सिंह विश्नोई**
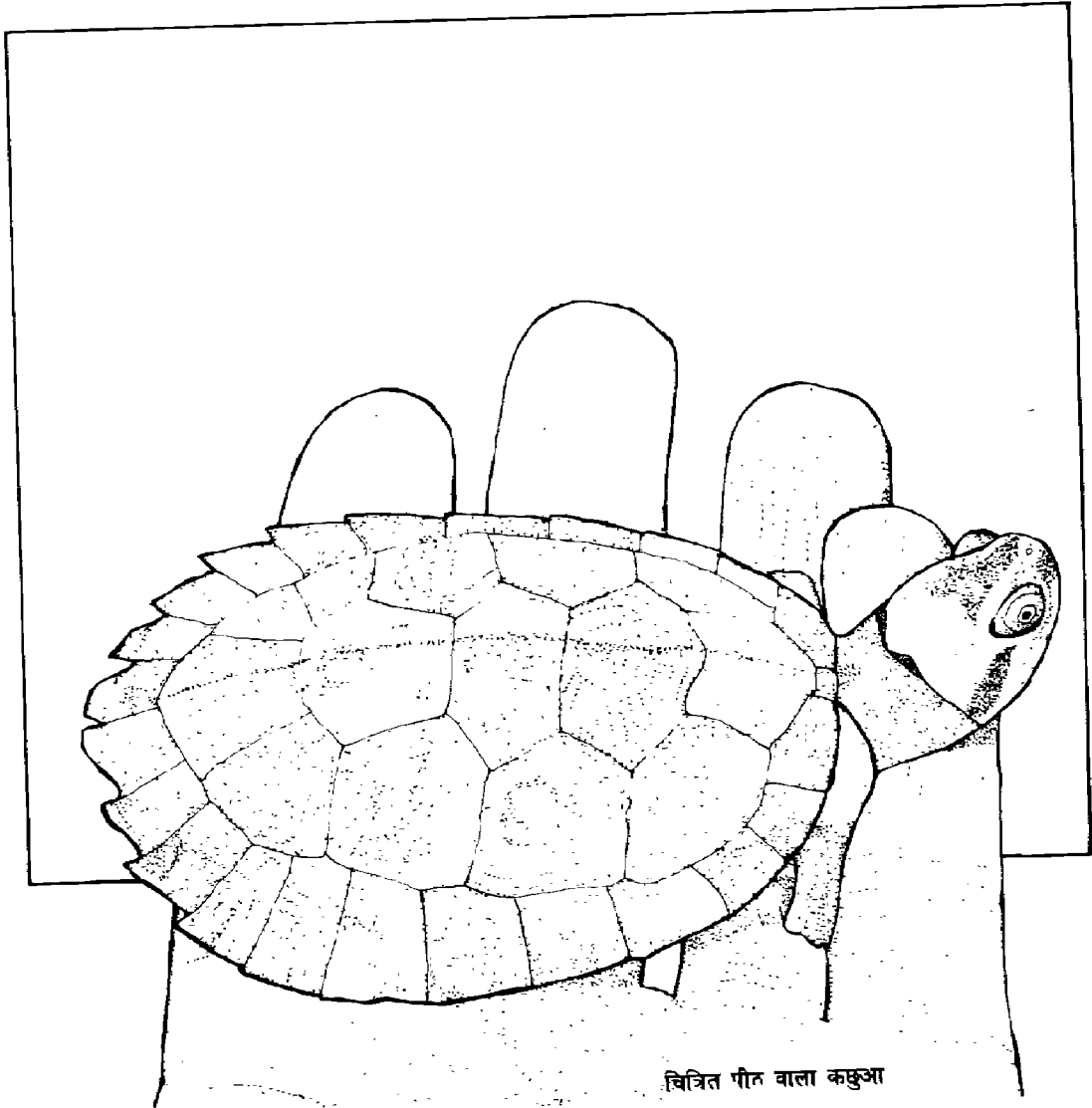
चित्रित पीठ वाला कछुआ

कछुए
और
मगर
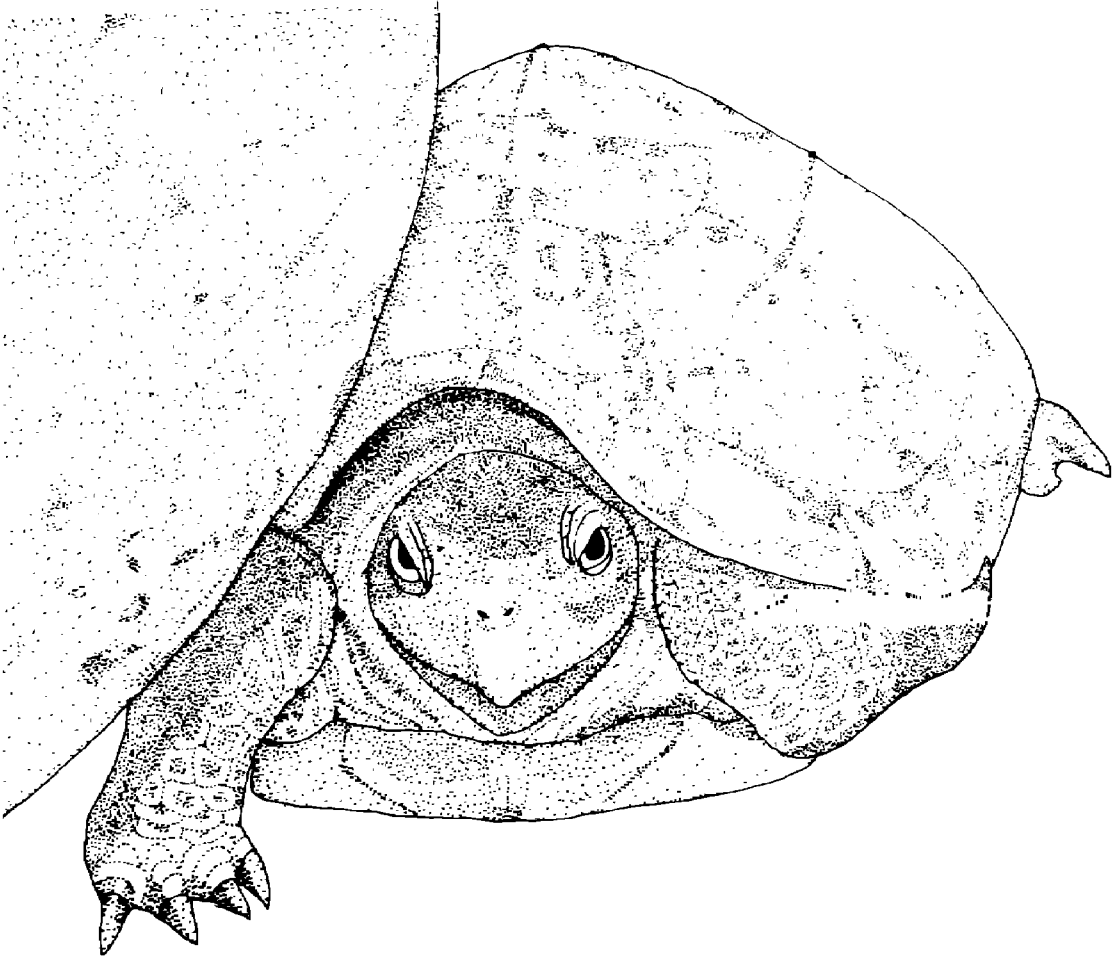
पश्चिमी घाट के आर्द्र वनों में पाया जाने वाला एकांतवासी 'केन' कछुआ। यह वन की नम भूमि पर रहता है और गिजाइयां, कीट-पतंगे, मशरूम, फल तथा सब्जियां खाता है।

जीव-जंतुओं का संसार आश्चर्यों से भरा हुआ है। हम लोग केरल के घने उष्णकटिबंधी जंगलों की एक घाटी में अपने गाइडों के साथ सावधानीपूर्वक चले जा रहे थे। हमारे ये गाइड कादर जनजाति के थे। ये लोग वन उत्पादों को ही इकट्ठा करते और खाते हैं, जैसे कि शहद, फल, बीज और जड़ें, आदि। झाड़ियों को अगल-बगल हटाते और बड़े ध्यान से देखते हुए रमण ने हमें आवाज लगायी। वहां एक विशाल वर्षावन पेड़ की जड़ में एक कछुआ बैठा था, एक ऐसा कछुआ जो संसार के सबसे दुर्लभ कछुओं में से था। हम हैरान थे कि कछुआ, वह भी पानी से बाहर जंगल की सूखी धरती पर? हां, ऐसा इसलिए कि वह जंगल का 'केन' कछुआ था, जो एक दुर्लभ जीव है और केवल भारत में पश्चिमी घाट के कुछ गिने-चुने जंगलों में ही पाया जाता है।

सामान्यतः कछुए दो प्रकार के होते हैं। एक तो जल के कछुए (जिन्हें अंग्रेजी में 'टर्टल' कहते हैं) और दूसरे थल के कछुए (जिन्हें अंग्रेजी में 'टार्टाइज' कहते हैं)। लेकिन कुछ कछुए ऐसे भी हैं जो इस नियम का पालन नहीं करते। ऐसा ही था वह कछुआ जो हमने देखा था। जल के कछुए अपना अधिकांश जीवन पानी में ही बिताते हैं। वे पानी से बाहर तभी आते हैं, जब उन्हें धूप सेंकनीं होती है अथवा अंडे देने होते हैं। मगरमच्छ यानी मगर भी ऐसा ही करते हैं, और हमने अक्सर यह देखा है कि नदी के एक ही तट पर कछुआ भी धूप सेंक

रहा होता है और वहीं पास ही में मगर भी। परंतु अगर कोई बड़ा मगर इस तरह आराम करते हुए कछुए के बहुत ही नजदीक आ जाये तो कछुआ पानी में तुरंत डुबकी लगाने के लिए भी तैयार रहता है।

कभी-कभी रात के समय कछुआ और मगर दोनों ही भोजन के लिए कीट-पतंगों, मेंढकों तथा चूहों की तलाश में थल पर आ जाते हैं। या फिर ऐसा भी हो सकता है कि वे शुष्क ऋतु में सूखते जा रहे अपने तालाब अथवा अपनी नदी को छोड़कर थल पर आकर कई-कई किलोमीटर की लंबी दूरी तय करके किसी नये घर की तलाश में चलते जायें। जल के कुछ कछुए तो बढ़कर इतने बड़े भी हो जाते हैं कि वे छोटे मगरों को खा सकते हैं। किंतु जब मगर बड़े हो जाते हैं तब इसका ठीक उलटा हो जाता है। वे भागकर अपनी जान न बचा सकने वाले कछुए को कच्चा चबा जाते हैं। परंतु अधिकतर कछुओं तथा मगरों का जीवन शांतिपूर्ण होता है। वे दलदलों, जल-स्रोतों तथा तालाबों में साथ-साथ रहते हैं। कभी-कभी तो कोई दमदार कछुआ मगर की पीठ पर ही चढ़ जाता है, मानो धूप सेंकने के लिए उसे कोई लट्ठा मिल गया हो।

भारत में अनेक प्रकार के जल और थल कछुए पाए जाते हैं, और उनमें से प्रत्येक के जीवन-यापन की विधि अलग ही होती है। कुछ कछुए पौधे खाते हैं तो कुछ कीटों, मछलियों तथा मेंढकों को आहार बनाते हैं। किंतु दूसरी ओर सभी मगर मांसाहारी होते हैं—अर्थात् वे केवल मांस और मछली ही खाते हैं। भारत में तीन प्रकार के मगर पाए जाते हैं और बहुत समय नहीं हुआ जब ये तीनों ही दुर्लभ नहीं थे। किंतु कई दूसरे वन्य प्राणियों की तरह मांस और खाल के लिए इनका भी खूब शिकार किया गया। साथ ही, इनके प्राकृतिक आवासों को नष्ट कर दिया गया ताकि वहां फसलें उगाई जा सकें एवं मकान तथा बांध बनाए जा सकें। एक प्रकार का मगर जिसे घड़ियाल कहते हैं, केवल मछली ही खाता है। दूसरा मगर मीठे पानी का मगर होता है और तीसरा मगर खारे पानी का मगर होता है।....अंतिम दोनों ही अपने आसपास किसी भी हरकत करने वाले जीव को खा जाते हैं। शर्त बस इतनी सी है कि उसका आकार सही हो। चूहे, मेंढक, सांप, केकड़े, हिरण, मछली और पक्षी—ये सब उनकी आहार-सूची में आते हैं।

खारे पानी के मगर समुद्र तट के किनारे गरानों (कच्छ) में रहते हैं। ये मगर तथा समुद्री कछुए उन इने-गिने सरीसृपों में से हैं जो खारे पानी में रहने में सक्षम हैं। इनमें कुछ विशेष

ग्रंथियां होती हैं जिनके द्वारा ये अपने शरीर से अतिरिक्त लवण को बाहर निकालते रहते हैं।

आपको पता होगा, कछुए और मगर भी उसी प्रकार के सरीसृप हैं जैसे कि सांप और छिपकलियां। ये सभी आश्चर्यजनक प्राणी हैं जिनके विषय में हमें जानना चाहिए। बरसों से सरीसृपों के बारे में लोग बस ये दो शब्द ही मुंह से निकालते रहे हैं—"उफ-छि !" किंतु अब
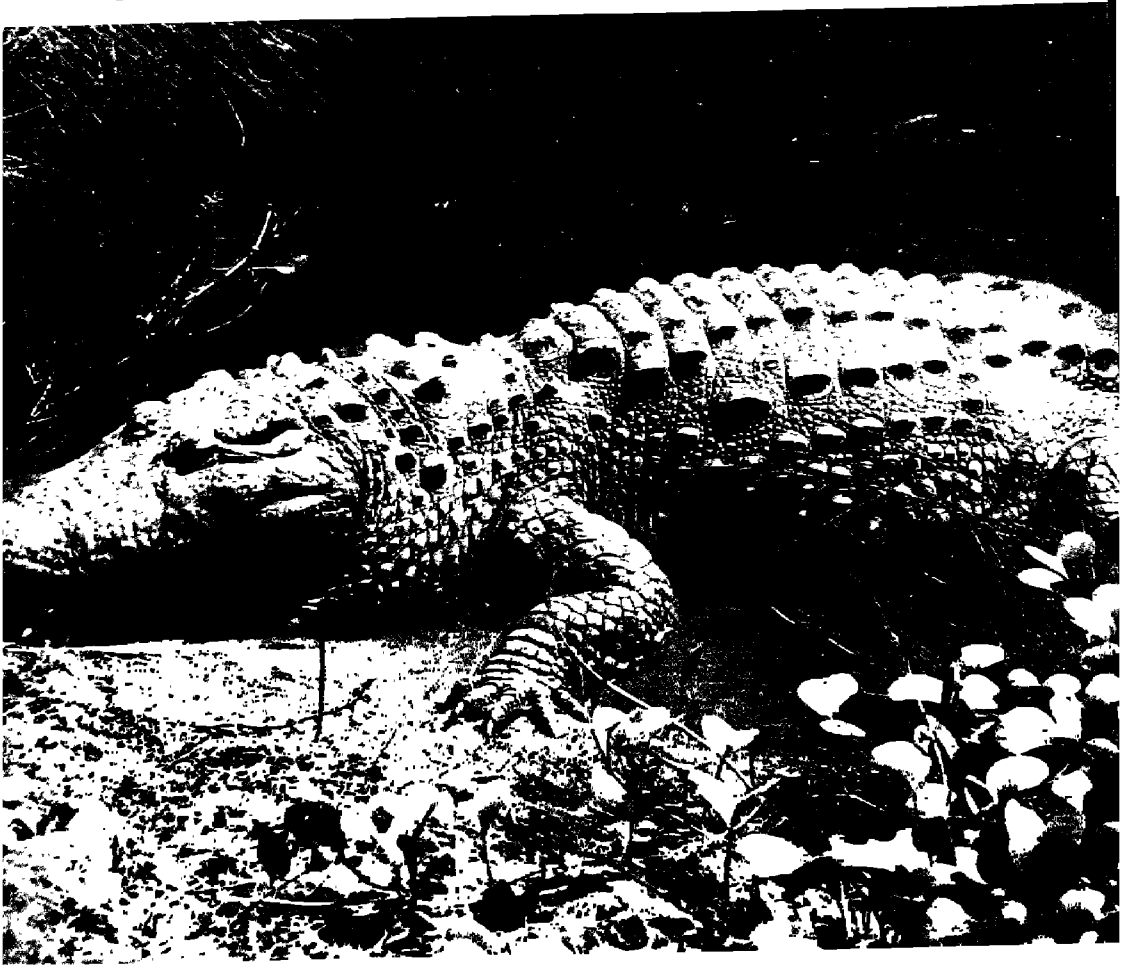
मकर

यह दृष्टिकोण बदल रहा है। हमें पता चलता जा रहा है कि पर्यावरण में सरीसृपों की एक बहुत ही उपयोगी भूमिका है और उनका संरक्षण एवं अध्ययन जरूरी है।

आइये, कछुओं तथा मगरों की दुनिया को हम और करीब से देखें।

जल कछुए
और
थल कछुए

हममें से अधिकतर लोग मगरों से डरते हैं, और वास्तव में हम उन्हें कभी छूना भी नहीं चाहेंगे। लेकिन कछुए हमें अच्छे लगते हैं। उनका झुर्रीदार छोटा-सा मुंह, गुंबद जैसा बीच से उभरा शरीर, और एक अजीब सी डगमगाती हुई चाल। इनसे भी ज्यादा खास बात तो यह है कि कछुओं में न तो जहर होता है, न जहर के दांत, और ये प्रायः काटते भी नहीं।

कछुओं के अंग्रेजी में तीन नाम हैं—'टाटाईज', 'टर्टल' तथा 'टेरापिन'। ये नाम कुछ भ्रामक हैं। किसका कौन सा नाम है? इसी समस्या के विषय में किसी ने एक कविता लिखी थी :

"सभी टाटाईज होते हैं टर्टल,
पर सभी टर्टल टार्टाइज नहीं।
सभी टेरापिन होते हैं टर्टल,
पर सभी टर्टल टेरापिन नहीं।
और कुछ टर्टल होते हैं बस टर्टल।"

इस तरह टर्टल, टार्टाइज और टेरापिन सभी प्रकार के कछुओं को सामान्यतः 'टर्टल' नाम से पुकारा जा सकता है। हालांकि वास्तविक टर्टल मीठे पानी (बिना लवण वाले) के तालाबों तथा नदियों में रहते हैं। इनकी दो किस्में होती हैं। एक प्रकार के टर्टल का कवच कड़ा होता
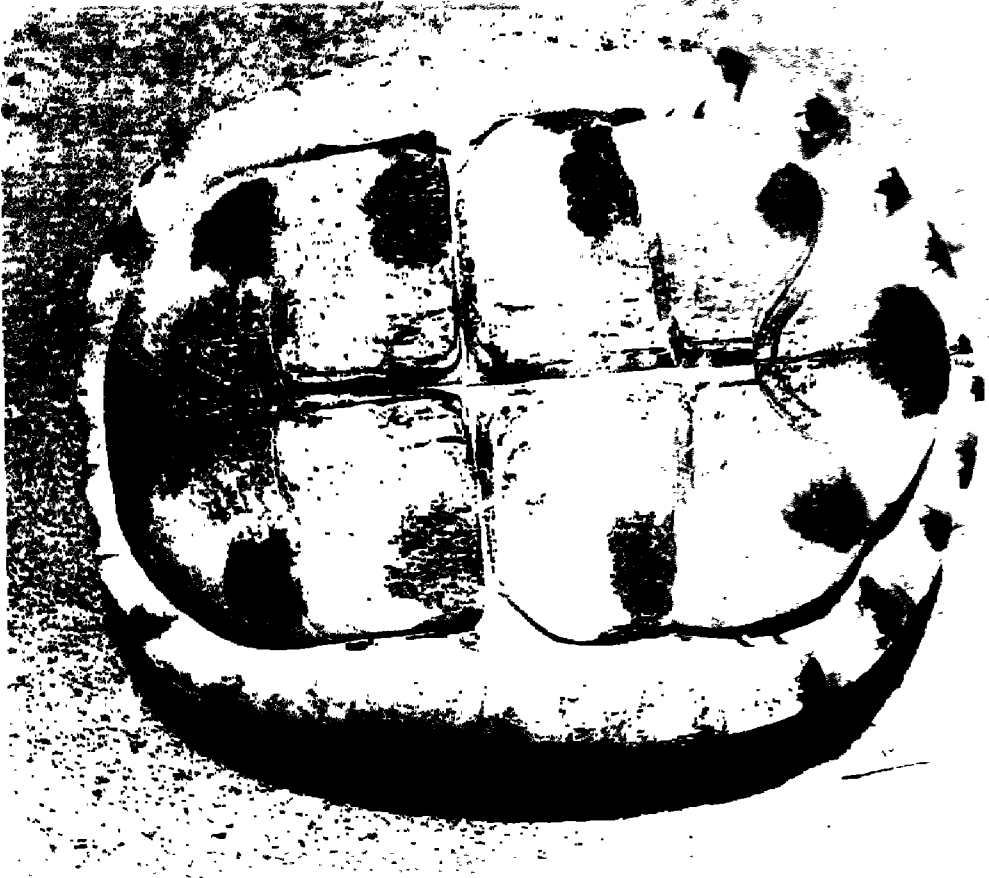
मलाया का बॉक्स-कछुआ, जिसका अधरवर्म (प्लास्ट्रोन) दिखाया गया है। इसकी संधि कछुए के कोमल भागों को पूरी तरह ढंक लेती है।

है। इन्हें टेरापिन कहते हैं। दूसरे प्रकार के टर्टल का कवच मुलायम होता है। संसार भर में आठ प्रकार के समुद्री कछुए पाये जाते हैं। वे जमीन पर केवल अंडे देने के लिए आते हैं। ऐसा ही एक समुद्री कछुआ है, 'हॉक्सबिल' टर्टल, (बाजठोंठी कछुआ) जिसे कभी-कभी

'टार्टाइज-शेल टर्टल' भी कहते हैं। हुआ न यह नाम भ्रामक ! और तो और, आस्ट्रेलिया का डिनर-प्लेट टार्टाइज वास्तव में मीठे पानी का कछुआ होता है। इस प्रकार के ये सारे अंग्रेजी नाम कुछ न कुछ भ्रामक हैं। हमें तो बस इतना याद रखना चाहिए कि कछुए दो प्रकार के होते हैं—एक जल कछुए और दूसरे थल कछुए।

कुछ जल कछुए फीके रंगों के होते हैं और वे चट्टान जैसे दिखते हैं, जबकि कुछ जल कछुओं में कवच सुंदर और रंग-बिरंगे होते हैं। दुनिया में ऐसा कोई जानवर नहीं है जिनमें कछुओं जैसा मजबूत कवच पाया जाता हो। उत्तरी अमेरिका तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया का 'बॉक्स' कछुआ अपने ऊपर खुद के वजन से दो सौ गुणा अधिक तक बोझ सहन कर सकता है। बाघ, तेंदुए और मगर जैसे परभक्षी दुश्मनों के बीच रहते हुए बहुत मजबूत कवच का होना बहुत ही उपयोगी है।

अधिकतर जल कछुओं में बोलने की क्षमता नहीं होती, और न ही वे किसी प्रकार की आवाज पैदा कर सकते हैं। किंतु थल के कुछ नर कछुए प्रजनन काल में शोर मचाते हैं। उनका यह शोर शायद अपनी मादाओं को डराने के लिए होता है ताकि वे इनके सामने समर्पण कर दें। कहा जाता है कि स्टार-कछुए चिंघाड़ते हैं, ट्रावनकोर के कछुए हांफते हैं, दक्षिण अमेरिका का लाल पांव वाला कछुआ कुटकुटाता है और गैलेपेगॉस का विशाल कछुआ गरजता है। उत्तर-पूर्वी भारत में तथा दक्षिण-पूर्वी एशिया के कुछ भागों में पाया जाने वाला विशाल एशियाई कछुआ छेड़ने पर दहाड़ता है। इसी तरह हिंद-चीन का बड़े सिर वाला कछुआ गुस्सा होने पर गुर्राता है। जीवविज्ञानियों ने कछुओं की अन्य आवाजों का भी पता लगाया है, जैसे कि अंडे देते समय ये चिंघाड़ते या सीटी बजाते हैं और ट्रावनकोर के कछुए बरसाती रातों में वृंद-गान करते हैं।

कछुए पृथ्वी पर बहुत पहले से विद्यमान हैं। 20 करोड़ वर्ष पुरानी चट्टानों में इनके जीवाश्म पाये गये हैं। यह वह समय था जब डाइनोसौरों का विकास प्रारंभ हो गया था। आज हम कछुओं की जो प्रजातियां देखते हैं वे आरंभिक प्रजातियों से कोई खास भिन्न नहीं हैं, जिससे सिद्ध होता है कि कछुए सफल प्राणी हैं। ये जलवायु, वनस्पतियों और स्तनीय युग के आगमन जैसे पृथ्वी पर होने वाले परिवर्तनों के अनुसार अपने आप को ढाल सके।

भारत में पाए जाने वाले सभी कछुए चाहे वे जल के हों या थल के, अपनी गर्दन को 'S' की आकृति में मोड़कर सिर को कवच में खींच लेते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि उनकी

गर्दन ऊर्ध्वस्थ है। दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया तथा अफ्रीका में पार्श्व-गर्दन वाले कछुए होते हैं। इनकी गर्दन बहुत लंबी होती है जो भीतर नहीं खींची जा सकती, इसलिए वे उसे बगल की ओर मोड़ लेते हैं, किंतु यह परभक्षियों से बचने के लिए बहुत कारगर नहीं है। यह नस्ल हमारे देश में प्रागैतिहासिक काल (बीते युग) में रहा करती थी। एक अन्य भारतीय प्रजाति शिवालिक थल कछुए की थी। यह एक विशाल कछुआ था जिसका कवच लगभग दो मीटर लंबा हुआ करता था। इसका पीठ वाला ऊपरी कवच इतना गहरा था कि वह एक जवान आदमी के लिए अच्छा खासा बाथ-टब बन सकता था तथा इतना बड़ा था कि दो व्यक्ति उसमें आराम से सो सकते थे।
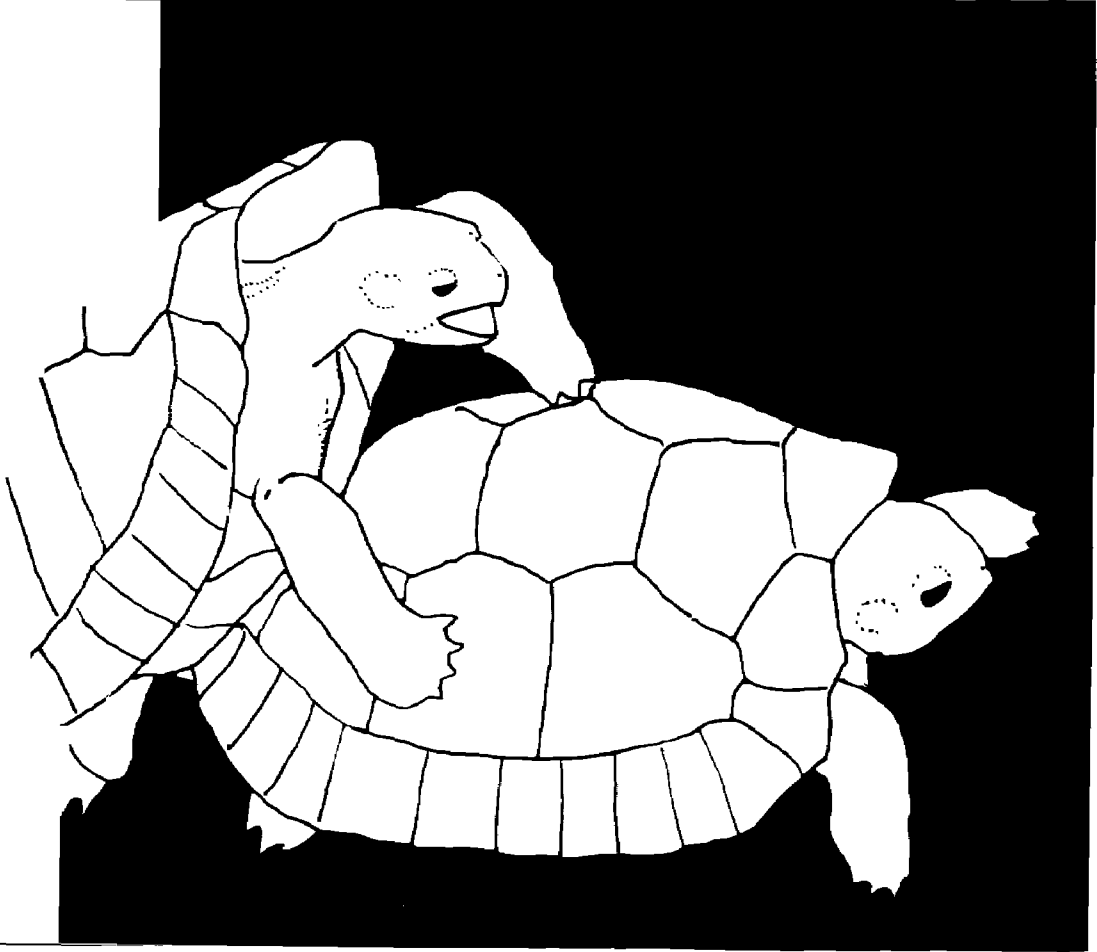
एक नर ट्रावनकोर थल कछुआ मुंह खोले मादा के ऊपर जाने का प्रयास कर रहा है।

अपने निकट संबंधी सांपों तथा छिपकलियों की तरह जल कछुए भी 'शीत-रक्त वाले' यानी असमतापी होते हैं। एक ओर जहां हम अपनी अधिकांश ऊर्जा शरीर गर्म रखने में खर्च करते हैं वहीं दूसरी ओर सरीसृप एक अन्य तरीका अपनाते हैं—वे अपना तापमान आसपास के वातावरण से ग्रहण करते हैं। वे धूप में जाकर अथवा धूप से हटकर, या पानी में जाकर अथवा पानी से बाहर आकर अपने को गर्म अथवा ठंडा करते हैं। अतः धूप सेंकना इतनी एक महत्वपूर्ण गतिविधि है। कभी-कभी आप देखेंगे कि कछुआ अपना सिर, गर्दन और हाथ-पैर फैलाए बड़े आराम की मुद्रा में पड़ा रहता है। धूप सेंकने का मुख्य कार्य देह के तापमान को बढ़ाना है, परंतु जीवविज्ञानियों का मानना है कि इसके कुछ अन्य लाभ भी हो सकते हैं, जैसे पाचन में सहायता, जोंक-चिचड़ी आदि परजीवियों से छुटकारा, और यहां तक कि विटामिन 'डी' के निर्माण में मदद।
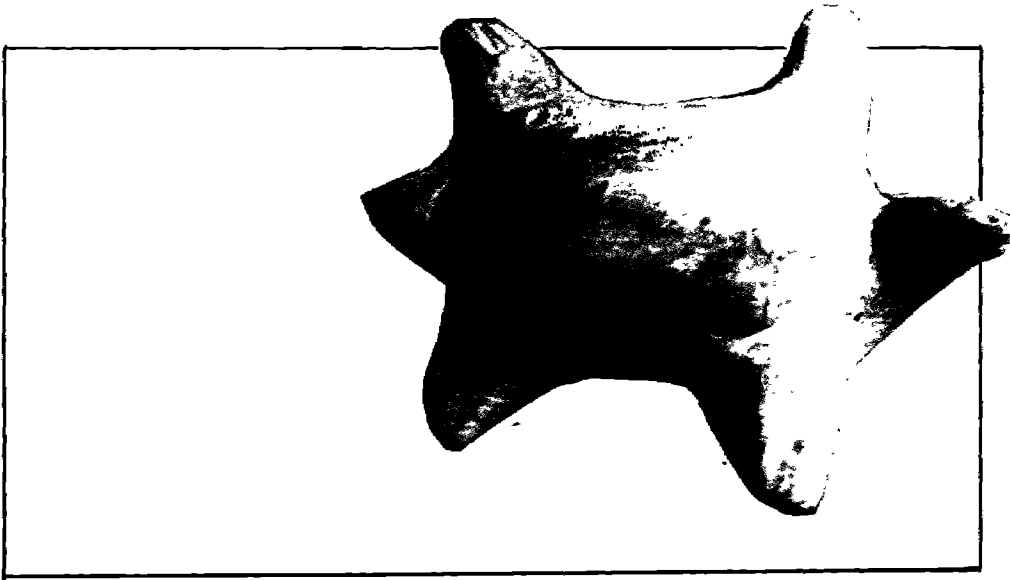
लगभग 4,000 वर्ष पूर्व हड़प्पा में बनाया गया एक खिलौना लैदरबैक कछुआ

जल कछुओं की नजर बहुत तेज होती है तथा उनकी अनेक किस्मों में रंगों को पहचानने की क्षमता भी पाई जाती है। जिन क्षेत्रों में कछुओं का शिकार किया जाता है वहां हमने देखा है कि किसी भी व्यक्ति को समीप आता देखकर कछुए फुर्ती से अपने सिर को पानी में डुबो

लेते हैं। भोजन तलाशने के लिए स्पष्ट दृष्टि का होना जरूरी है। कछुए में ऐसी क्षमता होनी चाहिए कि वह भूरी-पीली पत्तियों तथा घास के बीच में किसी रसीली हरी पत्ती को अथवा किसी चटकीले लाल फल को देख सके। जल व थल कछुओं में सुनने की साधारण शक्ति होती है।
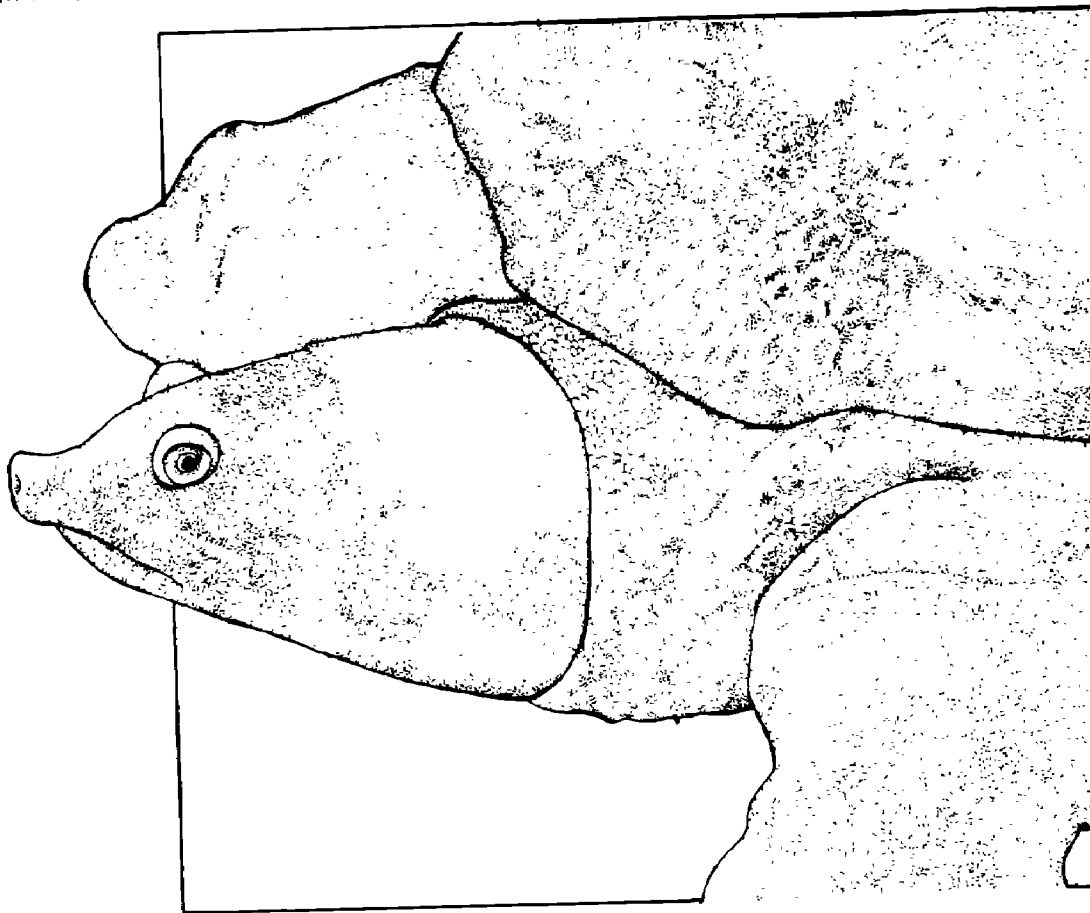
दक्षिण भारत में पाया जाने वाला लाइथ का कोमलकवची जल कछुआ। यह एक बहुत बड़ा और स्वभाव से गुस्सैल कछुआ है। यह अपने कंधों पर मस्सों के कारण पहचाना जाता है।

जल कछुओं के सम्मुख अगर लड़ो-मरो या भाग लो की स्थिति आ जाये तो वे अधिकतर 'भाग-लो' को चुन लते हैं, यानी अपने को सिकोड़कर कवच में छिप जाते हैं। मगर कुछ ऐसे भी हैं जो आसानी से समर्पण नहीं करते। कोमलकवची कछुए जबरदस्त लड़ाकू होते

हैं। सम्भवतः वे अपने स्वभाव से अपने कमजोर शरीर (नरम और खाए जा सकने वाले) की भरपाई करते हैं। हमने देखा है कि वे काटते हैं, पंजे मारते हैं तथा कभी-कभी अपने सिर से चोट करते हैं। पतले सिर वाले कोमलकवची कछुए के बारे में कहा जाता है कि वह छोटी नौकाओं पर हमला करके उन्हें डुबो भी देता है। पकड़ लिए जाने पर यह काटता नहीं है बल्कि अपने विचित्र आकार के सिर से चोट करता है। नदियों के बड़े कछुए कभी-कभी तैराकों को काट लेते हैं। गंगा एवं अन्य नदियों के किनारों के श्मशान घाटों पर कछुए शवों को खा-खाकर नदी को साफ तथा अप्रदूषित रखते हैं। वास्तव में भारत सरकार अब कछुओं का प्रजनन करा रही है, ताकि उन्हें नदियों में छोड़कर पर्यावरण को स्वच्छ रखा जा सके।
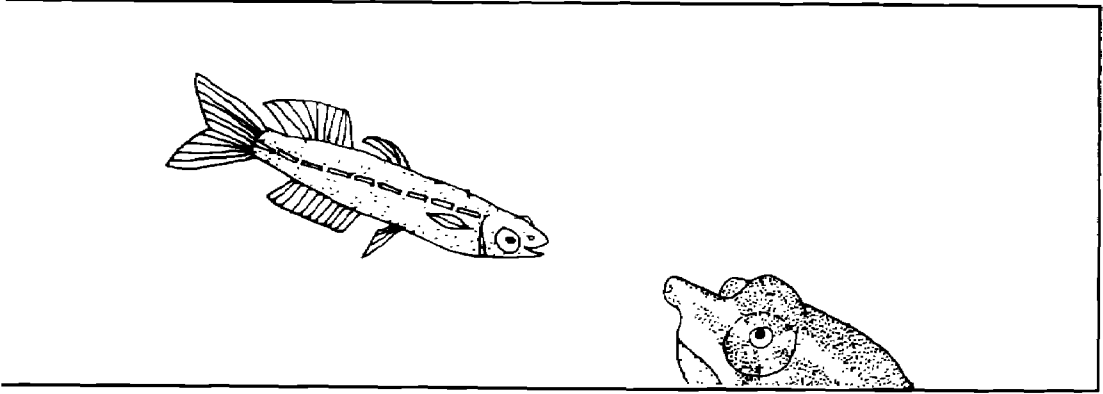
एक पतले सिर वाले कोमलकवची कछुए द्वारा किया गया अचानक हमला।

परंतु अक्सर मनुष्य ही जल कछुओं को अपना आहार बनाते हैं। अनेक प्रागैतिहासिक मानव बस्तियों में कछुओं के अवशेष पाये गये हैं और ये अवशेष आज भी समस्त भारत में जनजातियों की झोपड़ियों के पिछवाड़े पड़े देखे जा सकते हैं। आगे के पृष्ठों में हम आधुनिक काल में कछुओं के उपयोग के विषय में चर्चा करेंगे। शिकार किए जाने के फलस्वरूप कछुओं की अनेक प्रजातियां या तो दुर्लभ हो गयी हैं या पूरी तरह समाप्त हो ही गयी हैं।

जल कछुओं की आदतें

आहार के संबंध में अधिकतर कछुओं की कोई खास पसंद या नापसंद नहीं होती। वे सब कुछ खा लेते हैं, जैसे विभिन्न प्रकार के कीट, मछलियां और जलीय खरपतवार, इत्यादि। हां,

कुछ कछुए खास तरह के भोजन के शौकीन होते हैं। भारत तथा कई अन्य पड़ोसी देशों की बड़ी-बड़ी नदियों में पाया जाने वाला पतले सिर वाला कोमलकवची कछुआ केवल जीवित मछलियों को ही खाता है। इन्हें पकड़ने के लिए वह नदी की तलहटी में रेत-मिट्टी के भीतर घुसा बैठा रहता है। उसका केवल छोटा सा सिर बाहर निकला होता है। मछलियां आसपास से गुजरती हैं और उनमें से कोई एक-दो कछुए की आंखों को टटोलना चाहती हैं कि आखिर ये हैं क्या। तभी कछुआ अपनी लंबी गर्दन को तेजी से बाहर निकालता है और मछलियों को पकड़ लेता है।

समुद्र का लैदरबैक कछुआ खतरनाक जेलीफिशों का भोजन करता है। इस कछुए का 'W' की आकृति का ऊपरी जबड़ा इस मुलायम शिकार को काटने में उसकी मदद करता
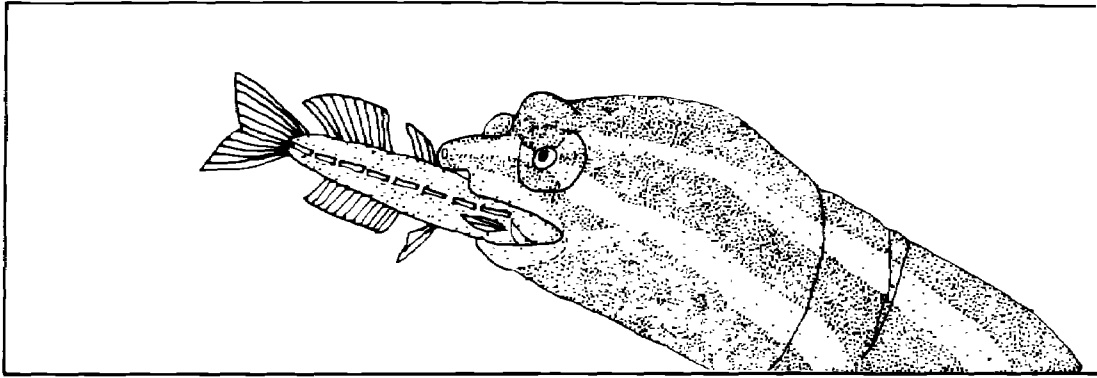
एक लंबी-सी गर्दन तीर की तरह बाहर आती है और संदेह न करने वाली मछली कछुए के मुंह में पहुंच जाती है।

है। समुद्र का बाजठोंठी (हाक्सबिल) कछुआ स्पंजों को बड़े चाव से खाता है और उन्हें पूरा ही निगल जाता है। इन स्पंजों के कांटों को भी वह नहीं छोड़ता जो वास्तव में कांच के होते हैं। इनके संकरे चोंच जैसे सिर की बनावट ही इस प्रकार की होती है जिससे स्पंजों को काटा जा सकता है तथा सीपियों, घोंघों एवं प्रवाल (मूंगा) चट्टानों में रहने वाले अन्य जीवों को चटखाकर तोड़ा जा सकता है। अनेक स्पंज जहरीले होते हैं जिन्हे खाने से अन्य जीवों की मौत हो सकती है, मगर 'हाक्सबिल' कछुए को कुछ नहीं होता। इसके विपरीत अगर कोई आदमी इस कछुए को खा ले तब उसकी मृत्यु हो सकती है। स्पंज का जहर कछुए के शरीर में उसे बिना कोई हानि पहुंचाए इकट्ठा हो जाता है।

आइए, फिर से मीठे पानी के कछुओं की बात करें। मीठे पानी के बड़े और कोमलकवची कछुए पौधों तथा जंतुओं दोनों को खाते हैं। ये अत्यंत शक्तिशाली जीव हैं जो पानी की ऊपरी सतह से बत्तखों तक के नीचे खींच ले जा सकते हैं। नन्हे मगर भी इन कछुओं का शिकार बन जाते हैं। हमने एक छोटे से भारतीय कोमलकवची कछुए को अपने से काफी बड़े, मोटे हरे मेंढक को उसकी टांग पकड़कर पानी के नीचे ले जाकर उससे उलझते देखा है। जब कछुए को मजबूरी में सांस लेने के लिए ऊपर पानी की सतह पर आना पड़ा तो अभी-भी सक्रिय रहा मेंढक उसके चंगुल से निकल गया।

मरे हुए प्राणियों को खाना अधिक आसान है। इसलिए कोमलकवची कछुए प्रायः मरे जानवरों को खाते हैं। एक बार हमारे एक मित्र ने अपना कैमरा इस आशा से एक मरी हुई भैंस के समीप लगा दिया कि बाघ के चित्र खींचे जा सकेंगे। मगर उसके छायाचित्रों ने दृश्य दिखाये कि बड़े आकार के कोमलकवची कछुए इस मरे जानवर को खींचे लिए जा रहे थे।

ज्यादातर जल कछुए अपने जीवन का प्रारंभ मांसभक्षी के रूप में करते हैं। वे जिस किसी भी छोटे जानवर को मार सकते हैं, उसे मारकर खा जाते हैं, या फिर जो भी मरे जानवर मिल जाएं उन्हें ही खा लेते हैं। ये आहार प्रोटीन से भरपूर होते हैं तथा कछुए तेजी से बढ़ते हैं। एक निश्चित आकार प्राप्त कर लेने के बाद कछुए पक्के शाकाहारी बन जाते हैं और खरपतवारों को खाने लगते हैं। हरे समुद्री कछुए तथा भारत का तम्बू कछुआ इस आहार परिवर्तन के प्रसिद्ध उदाहरण हैं। कुछ कछुए स्वजातिभक्षक होते हैं, यानी वे अपनी ही नस्ल के कछुओं को खाने लगते हैं। उस स्थिति में छोटे कछुओं को विशेष रूप से खतरा होता है। कछुओं को जब संवर्धन के लिए पाला जाता है तो हम देखते हैं कि बड़े कछुए छोटों पर हावी रहते हैं और उन्हें पनपने नहीं देते। अतः छोटे और कमजोर कछुओं के लिए अच्छी तरह छिप सकने की जगह बनानी पड़ती है ताकि वे अपने 'दादाओं' से बचे रह सकें।

प्रजनन

कछुए जल के हों या थल के, वे सभी अंडे देते हैं। ये अंडे गोल हो सकते हैं अथवा लंबे, और ये जमीन में गड्ढा खोदकर दिये जाते हैं। अंडों में से बच्चे निकलने की अवधि में काफी विभिन्नता पायी जाती है। बाहरी तापमान तथा कुछ अन्य कारकों के अनुसार अंडों में से बच्चों के निकलने का समय कुछ सप्ताह से लेकर कई महीनों तक का हो सकता है। अनेक प्रजातियों

में अंडों से बच्चे वर्षा ऋतु में निकलते हैं। ऐसा होने का एक अच्छा कारण है। बरसात में बहुत से पौधे तथा कीट पैदा हो जाते हैं, जिन्हें ये कछुए खा सकते हैं। इस समय पानी भी भरपूर होता है। इस प्रकार बच्चा कछुए की जरूरतें पूरी हो जाती हैं। कुछ क्षेत्रों में जनजातियों के बीच एक मान्यता हैं कि आकाश में बादलों की गरज अंडे के भीतर के शिशु कछुए को बता देती है कि अंडे से बाहर आने का सही समय आ गया है। जैसा हमने देखा है उससे भी लगता है कि यह बात सही ही है।

अलग-अलग प्रजातियों के कछुओं के अंडों के आकार और उनकी संख्या में अंतर पाया जाता है। कुछ थल कछुए तो एक समय में केवल एक ही बड़ा अंडा देते हैं, किंतु समुद्री कछुए
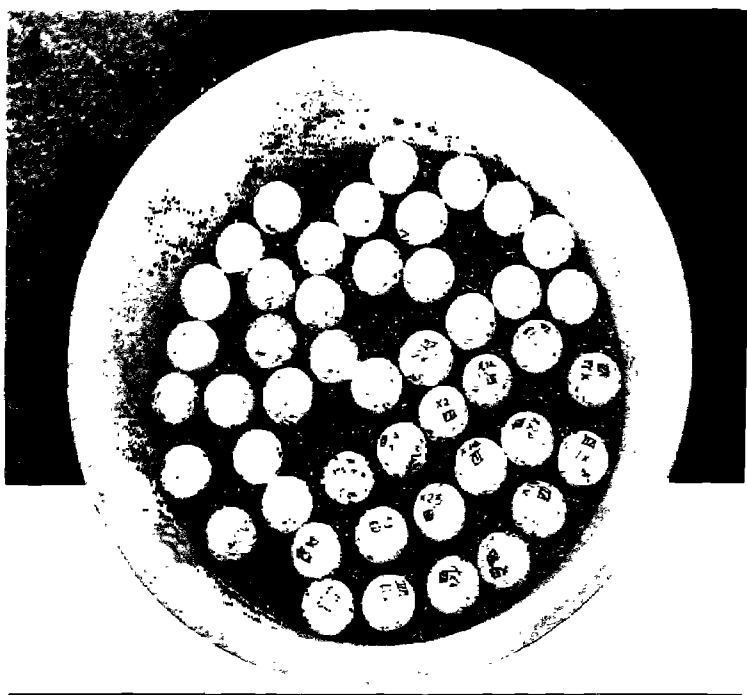
कोमलकवची कछुओं के अंडे लगभग गोल होते हैं। जिस तापमान पर अंडों का विकास होता है उसी पर यह निर्भर करता है कि भीतर पनपने वाला बच्चा नर होगा या मादा।

नियमित रूप से एक समय में एक सौ से भी अधिक अंडे देते हैं। मीठे पानी के कछुओं की स्थिति इन दोनों के बीच की होती है। दक्षिण-पूर्वी एशिया के वर्षा वनों का विशाल एशियाई कछुआ एक बार में पचास तक अंडे देता है। इस कछुए के बारे में लगभग सभी कुछ अजीब

सा है, जैसे कि इसका वजन तीस किलोग्राम तक होता है। यह घने जंगलों में रहता है। अपने अंडे गिरी हुई पत्तियों के ढेर में देता है और कई दिन तक उनकी चौकसी करता है कि कहीं कोई शत्रु उन्हें खा न जाये। ये सभी विशेषताएं गैर-कछुओं जैसी हैं। जिन जंगलों में यह पाया जाता है वहां की जनजातियों का कहना है कि यह कछुआ बाघ की तरह दहाड़ सकता है।

अंडे दिए जाने के समय से ही परभक्षियों द्वारा उनके खाए जाने का खतरा बना रहता है। ये परभक्षी कछुए के अंडे देने की ऋतु का बेसब्री से इंतजार करते हैं। मगर हमें एक ऐसे मामले की भी जानकारी है जब एक अंडे ने परभक्षी को बुद्धू बना दिया था। इसे एक सांप ने निगल लिया था पर वह अंडा बिना पचे उसी तरह 'मल' के रूप में बाहर निकल आया। इस अंडे से जब कछुए का जिंदा बच्चा बाहर निकला तब कहानी स्पष्ट हो गयी।

शत्रु

अत्यंत कठोर कवच के बावजूद कछुओं के अनेक शत्रु हैं। मानव भी इनमें से एक है। इन्हें खाने वाले शत्रुओं की सूची काफी लंबी है—बाघ, लकड़बग्घा, हवासिल, ऊदबिलाव, मगर, गोह, जंगली सूअर, केकड़े, महासेर मछली, तथा नीलगाय भी, जो वास्तव में एक प्रकार का मृग है। परंतु जल कछुए कुछ चालाकियां भी करते हैं। भारत का सबसे आम पाया जाने वाला मीठे पानी का 'फ्लैपशेल' कछुआ अपने आक्रमणकारी पर एक पीला तीव्र बदबूदार द्रव छिड़क देता है। जीवविज्ञानियों ने देखा है कि पकड़े जाने तथा छूने-छेड़ने पर थल कछुए एकदम से मल-मूत्र का त्याग कर देते हैं। कुछ कोमलकवची कछुओं के बच्चों में उनके ऊपरी कवच पर चार से छह तक आंखों जैसे निशान बने होते हैं जिनसे संभवतः शत्रु डर जाया करते हैं। आपने इस प्रकार के चिह्न तितलियों, शलभों, केटरपिलरों, मछलियों तथा छिपकलियों में भी देखे होंगे। बड़े होने के साथ ही कछुओं में ये चिह्न समाप्त हो जाते हैं। शक्तिशाली जबड़े और तेज रफ्तार वाले बड़े जल कछुए अपने प्राकृतिक शत्रुओं से ज्यादा अच्छी तरह निपट सकते हैं। सभी कोमलकवची तेज तैराक होते हैं।

कछुओं के रहने के स्थान

प्रकृति की वितरण व्यवस्था बड़ी ही अजीबोगरीब और कारगर होती है। जल और थल कछुओं की प्रत्येक प्रजाति अपने लिए अलग-अलग आवास चुनकर उसमें रहती है। इस तरह कछुए प्रतिस्पर्धा से बच जाते हैं और सबको पर्याप्त भोजन और रहने की जगह मिल जाती है। ट्रावनकोर
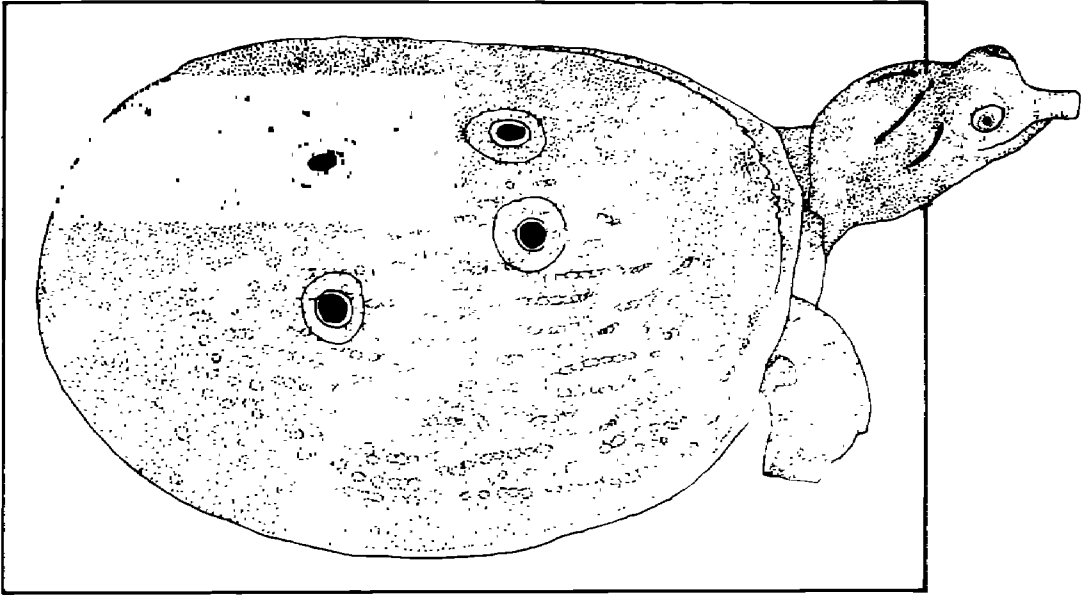
गंगा के कोमलकवची कछुए का बच्चा। इसके कवच पर आंखों जैसे निशान बने होते हैं जो कदाचित शत्रुओं को डराकर भगा देने का काम करते हैं।

थल कछुआ वनों की गीली धरती पसंद करता हैं जहां पेड़ों की गिरी हुई पत्तियां फैली होती हैं। स्टार थल कछुआ झाड़दार स्थलों में रहता है, जहां गर्मियों में दिन का तापमान 45 से. से भी ऊपर पहुंच जाता है। बंगलादेश का लम्बूतरा वृक्ष कछुआ भी एक वनवासी है। वहां के स्थानीय लोगों का दावा है कि यह कछुआ पेड़ पर चढ़ सकता है, इसीलिए वे लोग इसे 'वृक्ष कछुआ' कहते हैं। अनेक जल कछुओं ने जल को पूरी तरह त्याग कर पूर्ण रूप से थल को अपना आवास बना लिया है। इनमें से कदाचित सर्वाधिक प्रसिद्ध कछुआ भारत का 'केन कछुआ' है। इसका इतिहास बड़ा ही रोचक है। इसे कुछ ही समय पहले तक विलुप्त माना जाता था, मगर 1980 के दशक में जे. विजय नामक जीवविज्ञानी ने इसे फिर से केरल के जंगलों में देखा। यह भारत का सबसे छोटा कछुआ है। इस प्रजाति का वयस्क आराम से आपकी मुट्ठी में समा सकता है। इसके भूरे कवच के ऊपर बने तीन लंबे उभार इसे वन भूमि पर पड़ी सूखी पत्तियों सरीखा बना देते हैं। यह वहां की गिजाइयों, घोंघों और बीट्लों को खाता रहता है। कादर जनजाति के लोग खाने के लिए शिकारी कुत्तों की मदद से इन कछुओं को ढूंढ़कर पकड़ते हैं।

कभी-कभी एक ही प्रजाति के नर तथा मादा कुछओं का रंग और उनकी बनावट अलग-अलग होती है। नर नियमतः अधिक चटकीले रंग के होते हैं। कुछ में जैसे कि 'चित्रित पीठ' जल कछुए तथा 'केन' थल कछुए प्रजननकाल के दौरान लाल, गुलाबी तथा नारंगी रंग के हो जाते हैं, जो संभवतः मादाओं को आकर्षित करते हैं। अनेक प्रजातियों के नरों में नीचे (पेट की तरफ) का कवच भीतर को धंस जाता है ताकि मैथुन के दौरान मादा का उभरा हुआ ऊपर का कवच उस गहराई में बैठ सके। ब्राह्मणी नदी के कछुओं में मादाओं का आकार नरों से तीन गुणा तक अधिक बड़ा होता है। नर-मादा के आकार तथा रंग में विभिन्नता से भ्रमित होकर स्थानीय लोग कभी-कभी एक ही तरह के कछुए को अलग-अलग नाम दे देते हैं।
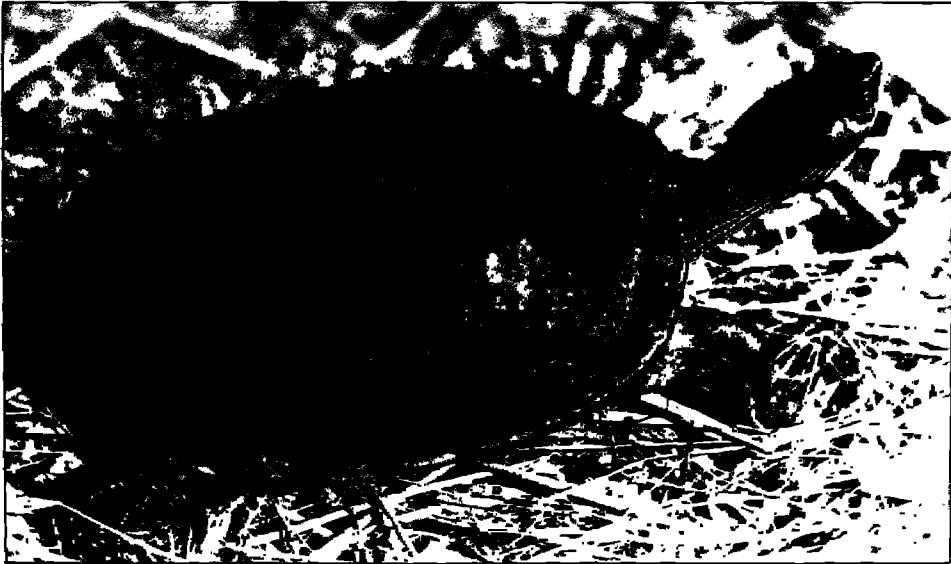
भारतीय 'छतनुमा' जल कछुआ एक सबसे चटकीला तथा सबसे आम पाया जाने वाला कठोरकवची कछुआ है। इसका कवच ऊपर को छत की तरह उभरा हुआ होता है तथा इसकी गर्दन पर अनेक धारियां होती हैं।

समुद्री कछुए

संसार में समुद्री कछुओं की कुल आठ प्रजातियां हैं और उनमें शायद सबसे विचित्र है लैदरबैक कछुआ। यह अन्य कछुओं से इतना ज्यादा भिन्न होता है कि वैज्ञानिकों ने इसका एक अलग ही कुल (फेमिली) बना दिया है। लैदरबैक कछुए वर्तमान समय में सबसे बड़े आकार के जीवित
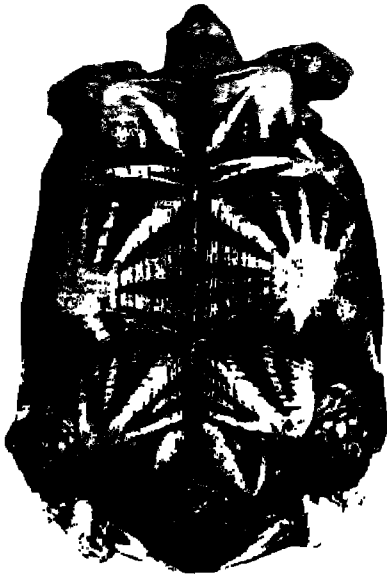
भारतीय स्टार थल कछुए में नद-मादा में अंतर। मादा (ऊपर) का आकार नर (नीचे) से स्पष्टतः बड़ा है।

कछुए हैं। ऐसा ही एक कछुआ कुछ समय पूर्व वेल्स के तट पर आ गया था। इसका वजन 1 टन था तथा लंबाई 2.5 मीटर (8 फुट) से ज्यादा थी। अन्य कछुए जहां 10 वर्ष अथवा उससे अधिक की आयु में वयस्क बनते हैं वहीं यह प्रजाति दो वर्ष में ही परिपक्व हो जाती है, जिसके दौरान इसका शरीर 30,000 गुणा बढ़ जाता है। यूं तो लैदरबैक कछुए उष्णकटिबंधी तटों पर घोंसले बनाते हैं, मगर वे समुद्र में दूर-दूर तक चले जाते हैं। समुद्र के ये दैत्याकार प्राणी उत्तरी ध्रुव सागर के बर्फीले जल में भी देखे गये हैं और वहां के इन्नुइट लोग (एस्किमो) इस प्राणी पर कविताएं लिखते हैं तथा इनके चित्र बनाते हैं। प्रश्न उठता है कि यह शीत-रक्त वाला सरीसृप उत्तरी समुद्रों की चरम ठंडक को किस प्रकार सहन करता है? जीवविज्ञानी इस पहेली को अभी तक नहीं सुलझा पाये हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका के जियॉर्जिया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों को इन लैदरबैक कछुओं के विषय में हाल ही में एक बहुत आश्चर्यजनक जानकारी प्राप्त हुई है। उन्होंने पता लगाया है कि ये प्राणी समुद्र की सतह से 1200 मीटर (तीन चौथाई मील) गहराई तक गोता लगा सकते हैं। इस कछुए के अतिरिक्त वायु में सांस लेने वाला कोई भी प्राणी इतनी गहराई तक गोता नहीं लगा पाता है। यहां तक कि विशालकाय स्पर्म-ह्वेल भी नहीं। अनुमान है कि ये गहरे गोते शिकार पकड़ने के लिए लगाए जाते हैं, और इनका शिकार मुख्यतः जेलीफिश होती हैं। वसा की मोटी-मोटी परतें, कोमल त्वचा तथा कार्टिलेज

का बना कंकाल कदाचित अधिक गहराई पर पानी के दबाव को सहन करने में इनका सहायक होता है।

अंडमान और निकोबार द्वीप समूहों में लैदरबैक कछुओं के घोंसला बनाने के स्थान पाये जाते हैं। एक बार इन्होंने केरल के तट पर अंडे दिये थे, लेकिन अब इस क्षेत्र को इन्होंने छोड़ दिया है, क्योंकि यहां मनुष्यों का आवागमन बहुत बढ़ गया है।

परंतु भारत में सबसे अधिक मिलने वाला एवं सबसे छोटा समुद्री कछुआ है जैतूनी रिडले। यह पूर्वी तथा पश्चिमी दोनों तटों के साथ-साथ बंगाल की खाड़ी के अंडमान और निकोबार द्वीप समूह में भी पाया जाता है। शीत एवं वसंत ऋतु की कुछ रातों में इस प्रजाति के लाखों कछुए घोंसले बनाने के लिए एक समुद्र तट पर एक साथ आ जाते हैं। घोंसले बनाने की ऐसी गतिविधि को स्पेनिश भाषा में 'अर्रिबादा' कहा जाता है जिसका अर्थ है 'आगमन'। इस प्रकार का आगमन बस दो ही कछुओं की विशेषता है एक तो हमारा जैतूनी रिडले और दूसरा इसका निकट संबंधी अटलांटिक का केम्प रिडले कछुआ। अर्रिबादा रातों में आप मुश्किल से ही समुद्र तट पर चल पायेंगे क्योंकि रेत का चप्पा-चप्पा कछुओं से भरा होता है। एक ही रात में लाखों अंडे दिए जाते हैं। इस तरह कम से कम कुछ अंडे तो अपने परभक्षियों का भोजन बनने से बच जाते हैं। लोगों का कहना है कि मुश्किल से एक हजार में से एक अंडा ऐसा होगा जिसमें से बच्चा निकलकर पूर्ण वयस्क बन पाता है। भारत का सबसे प्रसिद्ध कछुआ-तट उड़ीसा का गहीरमठ है जो भिटार कणिका राष्ट्रीय पार्क के अंतर्गत आता है। एक बार हमने 20,000 रिडले कछुओं को तट पर देखा था। लेकिन उससे एक रात पहले वहां 2,00,000 कछुए अंडे देने आये थे।

बहुत दिनों तक जैतूनी रिडले को एक अन्य जल कछुआ राजकच्छप (लागर हेड) समझा जाता रहा। हालांकि रिडले जहां केवल आधा मीटर तक ही लंबे होते हैं, राजकच्छप की लंबाई एक मीटर तक होती है। रिडले कछुओं का कवच धूसर-हरा और सिर छोटा होता है, वहीं दूसरी ओर राजकच्छप का कवच लाली लिए हुए भूरा तथा सिर बड़ा होता है। हां, दोनों जीवों का स्वभाव और उनकी आवश्यकताएं लगभग एक समान हैं और इसीलिए प्रकृति ने उनमें अंतर कर दिया है। रिडले भारतीय समुद्र तटों पर बहुतायत से पाया जाता है, लेकिन राजकच्छप बहुत दुर्लभ है।

एक लैदरबैक कुछआ पानी के भीतर अपने मुख्य आहार खतरनाक जेलीफिश को लक्ष्य बनाता हुआ।
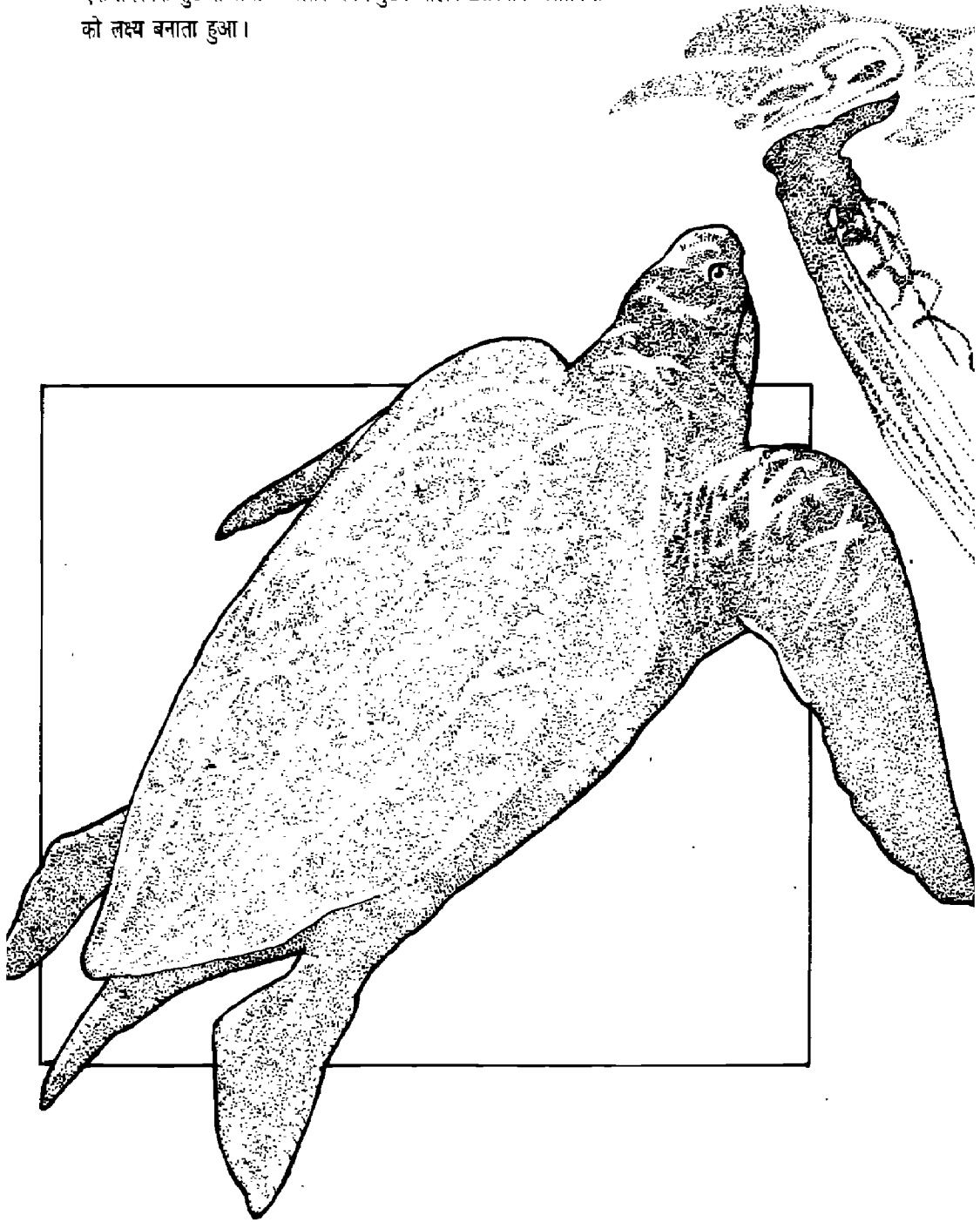
समुद्री कछुए वर्ष के अधिकांश समय खुले समुद्र में रहते हैं। वे समुद्र तट पर केवल अंडे देने के लिए आते हैं। किसी समुद्री कछुए को घोंसला खोदते और उसके भीतर अंडे देते देखना प्रकृति का एक बड़ा चमत्कारिक दृश्य होता है। एक बार मादा कछुआ अंडे देना शुरू कर दे तो फिर उसे दुनिया की कोई चीज विक्षुब्ध नहीं कर सकती। उसकी आंखों से झर-झर गिरते आंसू आंखों को उस रेत से साफ रखते हैं जो खोदते समय उड़ती है और साथ ही इन आंसुओं में समुद्र जल से अवशोषित हुआ अतिरिक्त लवण भी बाहर निकल जाता है। वह बड़ी मेहनत से घोंसला रेत से ढंक देती है। इस काम को वह दाएं-बाएं डोलती हुई बड़े परिश्रम से करती है और एक ऐसी चाल के साथ, मानो कोई अनाड़ी नर्तकी नृत्य कर रही हो।

अंडों से बाहर आने पर बच्चे रेत खोद कर बाहर आ जाते हैं, तथा तेजी से समुद्र की ओर भागते हैं। अभी हाल ही तक हमें मालूम नहीं था कि समुद्री कछुए अंडे से निकलने के बाद से पूर्ण वयस्क बनने तक का अपने जीवन का समय कैसे बिताते हैं। प्रश्न था कि शिशु-कछुए गहरे सागर में जीवित कैसे बने रहते हैं? वर्षों के अध्ययन के बाद कछुओं के जीवविज्ञानी

जाना-माना जैतूनी समुद्री कछुआ जो भारत के दोनों तटों पर तथा द्वीपों में पाया जाता है। ये पूर्वी तट पर हजारों की संख्या में घोंसले बनाते हैं।
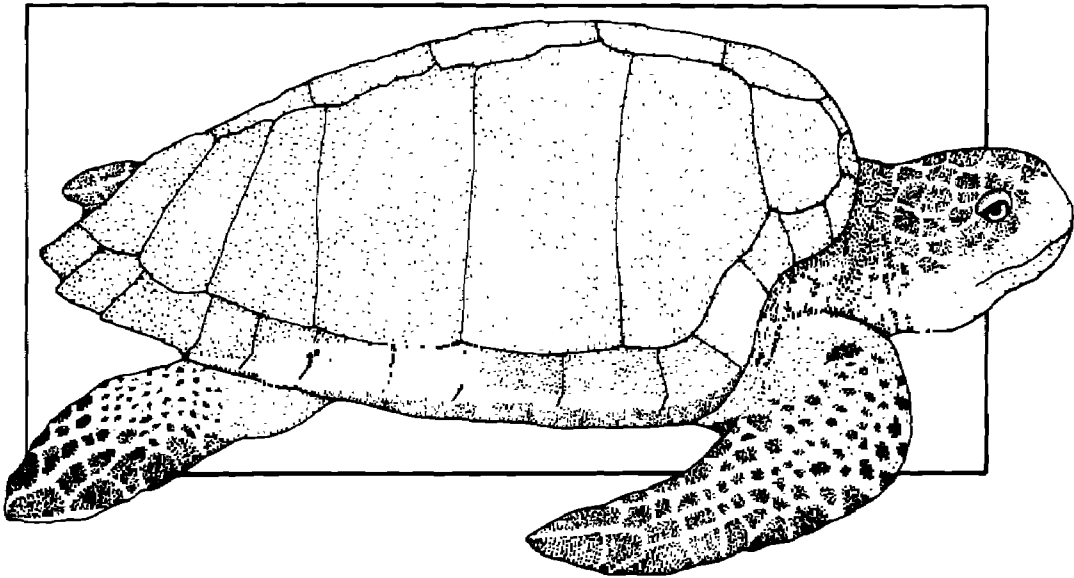
डा. आर्की कार्र ने इन 'अज्ञात वर्षों' की पहेली का हल ढूंढ़ निकाला। उन्होंने पता लगाया कि हरे कछुओं के बच्चे समुद्र में ऐसी जगहों की ओर चल पड़ते हैं जहां अलग-अलग जगहों का जल आकर मिलता है। यह जल अपने साथ लकड़ी, पौधे और जीव-जंतुओं को बहाकर ले आता है। यह स्थान अपने किस्म का एक बेजोड़ आवास होता है। शिशु-कछुए इन्हीं 'समुद्र की नर्सरियों' में पलकर बड़े होते हैं।

अन्य कछुए भी एक साथ बड़ी संख्या में घोंसले बनाते हैं। परंतु रिडले के विचित्र 'अर्रिबादा' से उनकी कोई तुलना नहीं है। नदियों का टेरापिन कठोर कवच वाला एक बड़ा कछुआ है, जिसकी नाक अजीब सी ऊपर की ओर मुड़ी हुई होती है। यह भी समूहों में घोंसले बनाता है। यह पूर्वी भारत व सुदूर पूर्व के अन्य देशों में बड़ी नदियों के मुहानों में पाया जाता है। दुर्भाग्य से इस लवण-प्रेमी कछुए का काफी शिकार किया गया जिससे आज यह अत्यंत दुर्लभ हो गया है। यह नदियों के खारी मुहानों में उगने वाले मैंग्रोव (कच्छ) पौधों की पत्तियों एवं उनके फलों को खाता है। परंतु आदमी सोचता है कि मैंग्रोव की लकड़ी उसकी अपनी जरूरत के लिए है और वह इन प्राणियों के आवास को नष्ट करता जा रहा है।

नदी के टेरापिन-कछुए की ऊपर को मुड़ी हुई नाक, जो उस समय सांस लेने में मदद करती है जब उसका शेष शरीर पानी में डूबा रहता है।

मनुष्यों के साथ जीवन

मनुष्य ने आदिकाल से आहार के लिए, आभूषणों के लिए, पालने के लिए और 'औषधि' के रूप में कछुओं का उपयोग किया है। अधिकतर जल कछुओं के कवच अत्यधिक कड़े होने के कारण बहुत अच्छी तरह परिरक्षित हो जाते हैं और जैसा कि हम पहले कह चुके हैं ऐसे अनेक कवच मनुष्यों के प्रागैतिहासिक आवासों में मिले हैं। प्राचीन मिस्रवासी कछुए को अशुभ मानते थे और सूर्य देवता 'रा' की पूजा करते समय वे यह जीव गाते थे :

"सदा बना रहे 'रा' और अंत हो जाये कछुए का"

हिंदू कछुए को भगवान विष्णु का अवतार मानते हैं और अनेक चित्रों, कथाओं तथा मंदिरों की कलामूर्तियों में कछुए को दर्शाया गया है। प्राचीन हिंदू ग्रंथों में लिखा है कि यह पृथ्वी एक विशालकाय कछुए की पीठ पर टिकी है। आश्चर्य है कि ऐसी ही धारणा उत्तरी अमेरिकी इंडियनों की भी है। चीनी दंतकथाओं में कहा गया है कि एक प्राचीन कछुए क्वाई ने, जिसे उत्तरी चतुर्भुज का देवता भी कहा गया है, समस्त ब्रह्मांड का निर्माण किया था।

संसार भर की जनजातियां विश्वास करती हैं कि वे कछुओं की संतानें हैं, इसलिए वे जल कछुओं का मांस नहीं खातीं। लेकिन विभिन्न कारणों से हर जगह कछुओं को मारा जाता है। कछुए का मांस प्रोटीन से भरपूर और सस्ता होता है और इसलिए इसे पूर्वी भारत के अनेक भागों में खाया जाता है। बड़े-बूढ़ों का कहना है कि पचास वर्ष पहले तक नदियों में बड़े-बड़े कछुए काफी संख्या में दिखाई देते थे...लेकिन आज स्थिति बदल गयी है। इनका अधिक शिकार, अंडों का भोजन के लिए उपयोग, नदी प्रदूषण, बांधों और जलाशयों के निर्माण से लोगों ने कछुओं का सफाया कर डाला है। यह वास्तव में खेदजनक है क्योंकि कछुए हमारे पर्यावरण का एक मूल्यवान अंग है।

अनेक धार्मिक-स्थलों पर कछुओं के लिए बड़े-बड़े कुंड बनाये गये हैं। दक्षिण-पूर्वी बंगलादेश में चटगांव के समीप एक मुस्लिम धर्मस्थली है जहां मीठे पानी के बड़े-बड़े कछुओं को बड़े लाड़-प्यार से पाला जाता है। वहां के लोगों का विश्वास है कि कछुए 'जिन' होते हैं या ये ऐसी दुरात्माएं हैं जो एक संत के श्राप से कुछओं के रूप में बदल गयी हैं। दुरात्माएं हों या न हों, पर एक बात जरूर है कि यहां पर लोग कछुओं की खूब देखभाल करते हैं और उन्हें भरपूर खिलाते-पिलाते हैं।

काफी समय से लोग मृत व्यक्तियों के शवों को गंगा में प्रवाहित करते चले आ रहे हैं।

उन्हें मालूम है कि कछुए और मगर इन्हें खा जाते हैं। गांववासी कछुओं के इस स्वभाव को बखूबी जानते हैं। बंगाल में एक मान्यता है कि शवयात्रा के समय जो शब्द उच्चारित होते हैं उनसे कछुए आकर्षित हो जाते हैं। लेकिन आज गंगा में कछुओं की संख्या बहुत कम हो गयी हैं, इसीलिए नदी को साफ करने की अपनी भूमिका को वे पूरी तरह नहीं निभा पाते हैं। यही कारण है कि भारत सरकार ने कछुओं का प्रजनन कार्यक्रम आरंभ किया है ताकि फिर से उन्हें नदियों में पर्याप्त संख्या में छोड़ा जा सके।

भगवान विष्णु अमृत-कलश को ढूंढ़ने के लिए एक विशाल कछुए 'कूर्म' के रूप में समुद्र में उतर गये।

जल कछुओं से हमें और भी कई लाभ हैं। ये जलीय खरपतवार को खाकर जल मार्गों को साफ रखते हैं। हरे कछुओं को 'समुद्र की गाय' कहा जाता है। ये समुद्री घास को खाते हैं। ये कछुए बेकार की खरपतवार को उपयोगी मांस में बदल देते हैं जिसे खाकर समुद्र तट पर तथा द्वीपों में रहने वाली जनजातियां अपना जीवन चलाती हैं। प्रायः इन लोगों को किसी और तरह का मांस उपलब्ध नहीं होता। कछुए घोंघों तथा कीटों को भी खाते हैं जिससे इन जीवों द्वारा फैलने वाले रोगों का नियंत्रण होता है।

जल और थल कछुओं का, उनकी प्राकृतिक दशाओं में ही अध्ययन के लिए

अनेक विधियां अपनायी गयी हैं। प्राचीन समय में इन प्राणियों के अध्ययन के लिए केवल एक ही विधि उपलब्ध थी, और वह थी इनको काटकर भीतर से देखने की। लेकिन आज इस बेकार और क्रूर विधि का प्रयोग नहीं किया जाता है। कछुए के आवागमन की जानकारी रखने के लिए उनके कवचों पर डोरी की चरखी बांध दी जाती है। एक कछुए को दूसरे कछुए से अलग करने के लिए उनके कवच पर खांचें काट दी जाती हैं। पैरों में टैग बांध देना भी कछुओं को पहचानने का एक तरीका है। कभी-कभी प्लास्टिक अथवा धातु के टुकड़े पर नाम और संख्या लिखकर उसे कछुए की अगली टांगों में बांध दिया जाता है। जीवविज्ञानी कछुओं की मादाओं के एक्स-रे चित्र लेकर पता लगाते हैं कि वे कितने अंडे देने जा रही हैं। जल और थल कछुओं के शरीर पर एक नन्हा रेडियो ट्रांसमीटर लगाकर कछुओं की दूरगामी गतिविधियों का अध्ययन किया जाता है। यह ट्रांसमीटर एक संकेत देता है जिसे रिसीवर प्राप्त कर लेता है। इन सभी प्रकार के अध्ययनों से हमें कछुओं की जैविकी के विषय में बहुत सी सूचनाएं प्राप्त होती हैं, जिनसे हमें यह जानने में मदद मिलती है कि इन्हें बचाने के लिए क्या कुछ किया जाना चाहिए।

घटती जाती संपत्ति

आश्चर्य की बात है कि जो प्राणी 20 करोड़ वर्षो से पृथ्वी पर रह रहे हैं, जिन्होंने डाइनोसौरों के साथ और बाद में आदिम मानव के साथ अपना जीवन बिताया, अब सभ्य लोगों के बीच उनके अस्तित्व को खतरा पैदा हो गया है। कहा जाता है कि जल कछुए के शरीर का हर हिस्सा मनुष्य के काम आता है—मांस, चर्बी, हड्डियां, कवच, रक्त आदि सभी। उसके शरीर के हर अंग की कीमत है। कछुए के शरीर से अनेक औषधियां बनाई जाती रही हैं, जिनसे बवासीर, अपच आदि को ठीक करने का दावा किया जाता रहा है हालांकि इनमें से कोई भी दावा सही सिद्ध नहीं हुआ। कछुओं को मारने के कई तरीके तो बड़े ही क्रूर हैं। कभी-कभी उन्हें पीठ के सहारे उलटाकर धीमी आग पर पकाया जाता है ताकि मांस कछुए के अपने ही कवच में पक सके। बड़े शहरों के बाजारों में कछुए के पेट वाले चपटे कवच को काटकर अलगकर दिया जाता है ताकि ग्राहक अपनी पसंद के हिस्से का मांस चुन सके। तमिलनाडु के तूतिकोरिन में अभी केवल कुछ वर्ष पहले तक एक 'सी टर्टल ब्लड ड्रिंकर्स सोसायटी' हुआ करती थी, जिसके सदस्य समुद्री कछुए का रक्त पीते थे। उनका कहना था कि इससे स्वास्थ्य

अच्छा रहता है।

प्रश्न उठता है कि क्या इन प्राणियों का मांस के लिए उपयोग किया जाना सही है ! हां, है, बशर्ते इनका सही ढंग से पालन किया जाये एवं सही तरीके से ही इनसे मांस प्राप्त किया जाये। एक वयस्क हरे कछुए में सौ किलोग्राम बढ़िया पौष्टिक मांस होता है। संसार भर की अनेक जनजातियां समुद्री कछुओं से ही प्रोटीन आहार प्राप्त करती हैं, लेकिन वे लोग प्रायः जरूरत के अनुसार ही कछुओं का शिकार करते हैं। इस तरह वे कछुओं की आबादी की सुरक्षा भी करते हैं। वह तो हम 'सभ्य' लोग ही हैं जो अपनी लालची प्रवृत्ति के वशीभूत होकर वन्य जीवों को नष्ट करते हैं। लैदरबैक कछुओं का मांस स्वादिष्ट नहीं होता, लेकिन इनका तेल नौकाओं में तथा लकड़ी के फर्नीचर में इस्तेमाल होता है। समुद्र के इन विशालकाय प्राणियों का तेल के लिए शिकार किए जाने के अतिरिक्त इन्हें पानी में तैरती छोटी-छोटी प्लास्टिक की थैलियों से भी खतरा है। इन थैलियों को जेलीफिश समझकर ये लैदरबैक कछुए उन्हें निगल जाते हैं और मर जाते हैं। समुद्रों को इस प्रकार के कूड़े-कचरे से मुक्त रखना चाहिए।

तालाब का चकत्तेदार कछुआ, जिसे बंगाली लोग भूत-कछुआ कहते हैं, एक खूबसूरत प्रजाति है।
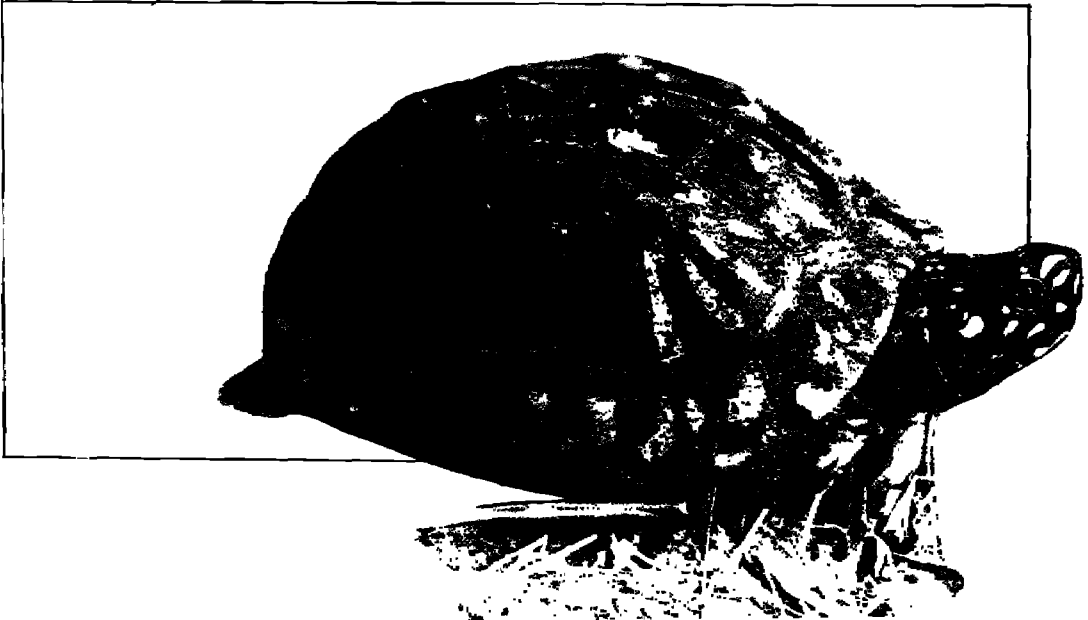
जल और थल कछुओं की अनेक प्रजातियां या तो विलुप्त हो चुकी हैं, या विलुप्त होने के कगार पर हैं, फिर भी कछुओं के विषय में आशा रखी ज़ा सकती है। हाल के वर्षों में हमने जल कछुओं के प्राकृतिक विज्ञान के विषय में बहुत कुछ सीखा है और यह जाना है कि इन्हें किस प्रकार के खतरे हैं। अब दुनिया भर के लोग इन्हें बचाने के लिए प्रयत्नशील हैं। समुद्र तटों से अंडे एकत्रित किये जाते हैं और अपनी देख-रेख में उनमें से बच्चे निकलने दिये जाते हैं। प्रयोगशालाओं में अंडों में से बच्चे निकालने की विधि से लगभग 90 प्रतिशत अंडों से सुरक्षित बच्चे निकल आते हैं और उनमें से अधिकांश बच्चे जीवित रहकर बड़े होते हैं। इन बच्चों को समुद्र में छोड़ दिया जाता है। ऐसा इसलिए किया जाता है कि अगर अंडों को तट पर छोड़ दिया जाये तो अधिकतर अंडों में से बच्चे निकल ही नहीं पायेंगे क्योंकि उन्हें मनुष्य, कुत्ते तथा अन्य जंगली परभक्षी खा जाते हैं। कभी-कभी शिशु-कछुओं को कई-कई महीनों तथा वर्षों तक पाला-पोसा जाता है और वे समुद्र में तभी छोड़े जाते हैं जब वे इतने बड़े हो जायें कि अपने प्राकृतिक शत्रुओं से अपनी रक्षा कर सकें। इस विधि को 'हेडस्टार्टिंग' कहते हैं। इस संबंध में एक सावधानी आवश्यक है। यह पता चल चुका है कि अंडों के भीतर जिस तापमान पर भ्रूण का विकास होता है, उसी तापमान के अनुसार पैदा होने वाले कछुए का लिंग निर्धारण होता है। अतः यदि सावधानी नहीं बरती गयी तो इन जननशालाओं से या तो नर कछुए ही निम्न तापमान पर या मादा कछुए ही उच्च तापमान पर पैदा होंगे। ऐसा अनुमान है कि 'हेडस्टार्टिंग' से केवल 'भीरू' कछुए ही पैदा होते हैं जिनमें प्रकृति में संघर्ष करके ज़ीने की प्रवृत्तियां कम हो जाती हैं।

मानव बस्तियों के नजदीक की तुलना में इनसे दूर के क्षेत्रों के जल कछुए आकार में बड़े और संख्या में अधिक होते हैं। कुछ जल कछुए एक खास किस्म के क्षेत्र में ही रह सकते हैं। इसका एक उदाहरण है मैंग्रोव (कच्छ) जंगलों में पाया जाने वाला नदियों का बड़ा टेरापिन कछुआ। किसी समय कलकत्ता के पूर्व की 'साल्ट लेक' के दलदलों का सिलसिला सुदरबन के मैंग्रोव जंगलों से जुड़ा हुआ था। नदियों के टेरापिन उनमें रहा करते थे। लेकिन पिछले लगभग 100 वर्षों से इन्हें जोड़ने वाली संकरी खाड़ियों को बड़े-बड़े मछली ताल तथा मकान बनाने के लिए बंद कर दिया गया है। आहार तथा आश्रय स्थल समाप्त हो जाने पर इस क्षेत्र से टेरापिन कछुए विलीन हो गये।

यदि हम जल कछुओं को खाना जारी रखते हैं तो उनका पालन भी किया जाना चाहिए।
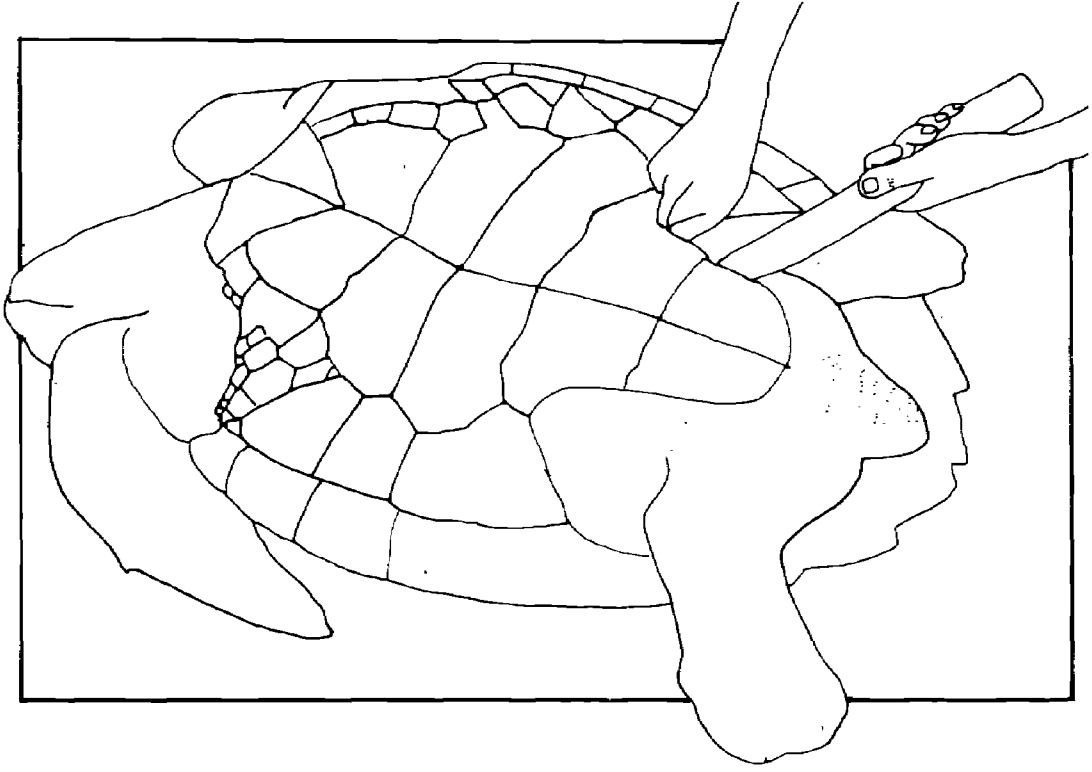
उलटा किये गये रिडले जल कछुए के अधरवर्म (प्लास्ट्रोन) को एक तेज चाकू से काटकर कछुए को धीरे-धीरे मारा जा रहा है।

अनेक देशों में ऐसा किया जा रहा है। कछुआ पालन इसलिए भी किया जा रहा है ताकि प्राकृतिक क्षेत्रों में इन्हें फिर से बसाया जा सके। ऐसा इसलिए भी जरूरी है क्योंकि ये प्राकृतिक शृंखला की महत्वपूर्ण कड़ियां हैं। दक्षिण अमेरिका की एक खरपतवार, जल कुमुदनी संसार के अनेक क्षेत्रों में एक नाशीजीव बन चुकी है। इसने जल मार्गों को अवरुद्ध कर दिया है। इस रुके हुए पानी में मलेरिया पैदा करने वाले मच्छर भी प्रजनन करते हैं। मगर हमारे तालाबों तथा नदियों में पाये जाने वाले अनेक कछुए इस जलीय खरपतवार को खाते हैं। कुछ कछुए तो मच्छरों तक को खा जाते हैं। ऐसे कछुओं को पालने से इस प्रकार के खरपतवार वाले जलस्रोतों के आसपास के क्षेत्रों में रोगों का नियंत्रण भी हो सकता है।

दुख की बात है कि हम जितने भी जल कछुओं को बाजारों में देखते हैं वे सब के सब जंगली अवस्था में पकड़े हुए होते हैं। पूर्वी समुद्र तट पर हजारों की संख्या में समुद्री कछुए

पकड़े जाते हैं। इन्हें श्रिम्प जालों में पकड़ा जाता है जबकि यह गैर-कानूनी है। इनमें से कुछ को सारे पश्चिम बंगाल के बाजारों में बेचा जाता है। पर जाल में अनेक कछुए दमघुट कर मर जाते हैं और उन्हें बस जाल में से निकालकर फेंक दिया जाता हैं। कुछ तटवासी रेमोरा अर्थात् 'सकर-फिश' की सहायता से समुद्री कछुए पकड़ते हैं। कछुए को देखते ही मछुआरा इस मछली को छोड़ता है और मछली रास्ते में मिलने वाले किसी भी बड़े आकार के प्राणी पर चिपक जाती है। जब कछुए के शरीर पर कुछ एक रेमोरा मछलियां चिपक जाती हैं तो कछुआ बचकर नहीं निकल पाता। अन्य देशों में शिकारी कछुओं के लकड़ी के मॉडल बनाकर नर कछुओं को अपनी नावों की ओर आकर्षित करते हैं। समुद्री कछुओं को हार्पून से भी पकड़ा जाता है। कभी-कभी नाव के पास तैरते हुए कछुए को हाथ से भी पकड़ लिया जाता है। और तो और, छोटे आकार के कछुओं को भी नहीं छोड़ा जाता। स्टार थल कछुए के कवचों को नायाब वस्तु के रूप में दक्षिण भारत में शंख-कौड़ियों की दुकानों पर बेचा भी जाता है।

थल कछुओं को एक और उद्देश्य के लिए भी पकड़ा जाता है—पालतू बनाने के लिए। यह हानिकारक है क्योंकि अधिकतर कछुओं को बच्चों के लिए खरीदा जाता है और बच्चों को इनकी देखभाल करनी आती नहीं। परिणामतः ये जल्दी ही मर जाते हैं। जल अथवा थल के कछुओं को थोड़े समय के लिए एक्वेरियमों (जलजीवशालाओं) में अथवा किसी भी अन्य उपयुक्त बंद स्थान में रखा जा सकता है जिनमें स्थितियां अधिक से अधिक प्राकृतिक पर्यावरण जैसी हों। इन्हें पीने के लिए पानी भी देना चाहिए। पानी रेगिस्तानी कछुए के समान 'जल से दूर भागने' वाली किस्मों को भी देना चाहिए। अधिकतर शिशु जल कछुओं को स्वयं पकड़ा जा सकने वाला छोटे आकार का जीवित आहार मिल जाए तो उन्हें बहुत मजा आता है। मगर बड़े कछुओं को रसदार फल तथा पत्तियां अच्छी लगती हैं।

हम सबका यह प्रयास होना चाहिए कि हमारे देश में रहने वाले जल व थल कछुए विलुप्त न हो जायें। यदि आपको इन सुंदर और उपयोगी प्राणियों में रुचि हो तो इनके बारे में और अधिक पढ़िए तथा इन्हें चिड़ियाघरों एवं मद्रास के मगर-बैंक में देखिए। तालाबों एवं नदियों में भी इन्हें ढूंढ़ने की कोशिश कीजिए। यदि आप इनके विषय में और अधिक जानना चाहें तो कभी भी मगर-बैंक को लिख सकते हैं। कछुओं के अध्ययन में एक बहुत बड़ा लाभ है: वे बहुत तेजी से आप से दूर नहीं भाग सकते।

मगर
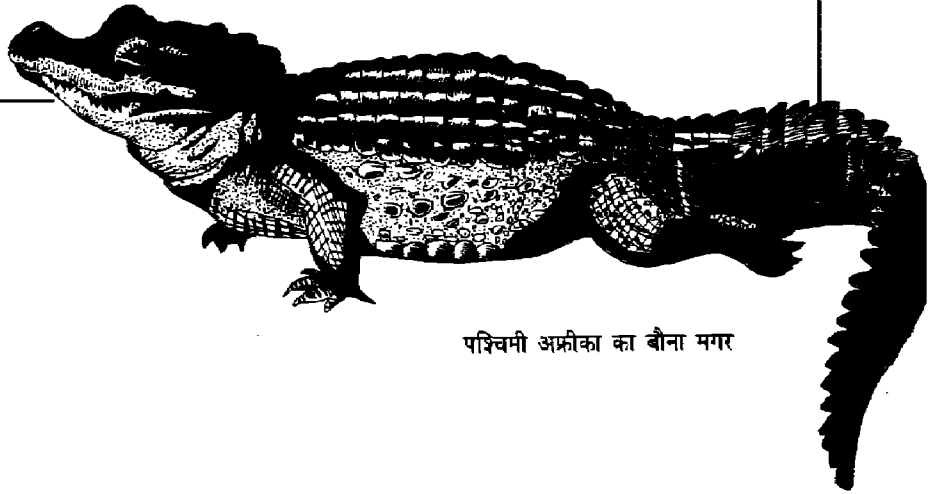
पश्चिमी अफ्रीका का बौना मगर

बड़े-बड़े दांत और मोटी-मोटी गांठों वाली प्राचीन झलकवाली खाल—यह है मगर की हमारी प्रथम कल्पना। हम बचपन से ही मगर के बारे में अनेकानेक कहानियां सुनते और पढ़ते आ रहे हैं। इनसे पता चलता है कि ये प्राणी मन को भाने वाले नहीं है। लेकिन जो

मगर सबसे ज्यादा निंदित प्राणियों में से एक है। 'दी ओरिएंटल ऐनुअल' से लिया गया 1834 का एक सुंदर चित्र जिसमें इस प्राणी को एक हाथी को पराजित करते हुए दिखाया गया है।

लोग मगरों का अध्ययन करते हैं उनके अनुसार सच्चाई इससे उलटी है। जब आप भारत में पायी जाने वाली तीन प्रजातियों के मगरों के विषय में पढ़ चुकें, तभी आप अपनी धारणा बनाएं। हो सकता है तब आपको जल के ये राजा अच्छे लगने लगें जैसे कि हमें लगते हैं। एक बात जरूर है कि मनुष्यों और इनमें बहुत सारी समानताएं हैं। इनमें सूंघने, देखने और सुनने की अच्छी शक्ति है। ये ऊंचा शोर मचा सकते हैं, और एक-दूसरे की सुरक्षा के लिए सामने आ जाते हैं। इनके माता-पिता अंडों-बच्चों की खूब देखभाल करते हैं, जैसा कि हम करते हैं।

मकर अथवा मीठे पानी का मगर

मकर या मीठे पानी के मगर भारत की नदियों, झीलों तथा तालाबों आदि सभी जगहों पर पाये जाते हैं। यह खुरदरी खाल वाला सरीसृप है जिसकी लंबाई 4 मीटर (13 फुट) तक तथा वजन 300 किलोग्राम तक होता है।

हमने मकर को तरह-तरह के जानवरों को पकड़ते और खाते देखा है। शिशु-मकर अच्छा खासा कूद लेते हैं। ये पानी की सतह से ऊपर उछलकर हवा में उड़ती भंभीरी को पकड़ लेते हैं और अपने दोपहर के भोज में नियमपूर्वक छोटे केकड़ों, मछलियों और मेंढकों को पकड़कर खाते हैं। आयु के साथ-साथ जैसे-जैसे इनका शरीर बड़ा होता जाता है ये कीड़े-मकौड़ों तथा मेंढकों के साथ ही सांपों, पक्षियों और चूहों को भी पकड़कर खाने लगते हैं। जब और भी बड़े हो जाते हैं तब ये जंगली सूअर तथा हिरण तक को खा जाते हैं। ये पानी में अथवा पानी के समीप पड़े मरे जानवरों को भी खा जाते हैं और इस प्रकार पर्यावरण को साफ रखने में सहायता करते हैं। मछलियां मकर का मुख्य आहार हैं। जब गर्मियों में तालाब और नदियां सूखने लगती हैं तब थोड़े रह गए पानी में मछली पकड़ना आसान हो जाता है।

मगरों को प्रायः यह अंदाजा होता है कि वे कितना बड़ा शिकार ठीक से पकड़कर संभाल सकते हैं। अगर शिकार बहुत बड़ा हुआ तो वे शायद ही उस पर झपटें। एक बार रॉम कीचड़

अनेक मगरों तथा ऐलिगेटरों की मादाएं, जैसे कि चीन की मादा-ऐलिगेटर, अंडे देने के बाद घोंसले की रखवाली करती हैं, और अंडों में से बच्चों के निकलने में मदद करती हैं।
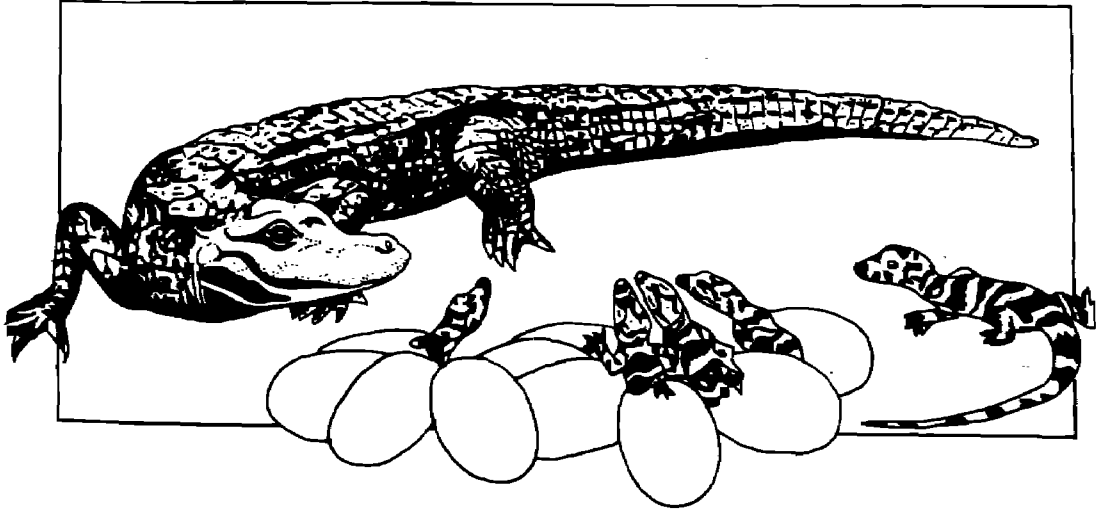
भरे मगर-ताल में मगरों को मापकर अपने हाथ धो रहा था कि अचानक बिजली की तेजी से एक नर मगर आया और उसका हाथ दबोच लिया। पल भर में मगर ने कुछ सोचा और फैसला किया कि यह भोजन तो शायद बहुत बड़ा है और उसने रॉम को छोड़ दिया। उसके हाथ पर खरोंच तक नहीं आयी थी।

मद्रास के मगर-बैंक में हर दूसरे दिन छह हजार मगरों को खाना खिलाया जाता है। इसके लिए हर सप्ताह दो टन मछली, गोश्त, चूहे तथा मोल-केकड़े खरीदने पड़ते हैं। लोग जितना सोचते हैं वास्तव में मगर उतना नहीं खाते। उसका एक कारण यह है कि मगरों के शरीर को बहुत ज्यादा ऊर्जा की जरूरत नहीं होती, क्योंकि इनका जीवन आराम से भरा होता है। इन्हें धूप में पड़ा रहना अच्छा लगता है या फिर ये पानी की सतह पर आराम से तिरते रहते हैं, जबकि दूसरी ओर पक्षी और स्तनपायी यहां-वहां दौड़ते-भागते रहते हैं। साथ ही, मगर अपने खाये हुए भोजन का कहीं अधिक कारगर ढंग से उपयोग करते हैं, और भोजन का बहुत ही कम भाग बेकार जाता है। इनका उत्कृष्ट पाचन-तंत्र हड्डियों तक को पचा लेता है। उदाहरण के लिए, मगर-बैंक का 150 किलोग्राम भारी एक नर मकर महीने भर में केवल 20 किलोग्राम गोश्त खाता है। यह मात्रा तो एक एल्सेशियन कुत्ते की आवश्यकता से भी कम है।

दिसंबर माह के आरंभ में बड़े आकार के प्रभावी नर-मकर अपने जबड़ों से पानी को जोर-जोर से छपछपाकर तथा गुर्राकर अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते हैं। वे अपनी पूंछ को बलपूर्वक हिलाते-डुलाते हुए अपनी संगिनियों की तलाश में अपने जल-आवास में तेजी से घूमते-फिरते हैं। मैथुन क्रिया जल के भीतर संपन्न होती है। एक माह के बाद मादा को अंडे देने के बारे में सोचना पड़ता है। घोंसला बनाने के लिए वह कहीं किनारे के नजदीक ही कोई सुरक्षित और एकांत रेतीला अथवा मिट्टी वाला स्थल ढूंढ़ लेती है। कभी-कभी वह पूरी तरह सही जगह ढूंढ़ पाने से पहले कई-कई स्थानों पर अपने पिछले पांवों से घोंसला खोद-खोद कर परखती है। तब किसी एक रात में वह बीस से लेकर तीस तक की संख्या में कड़े, सफेद अंडे देती है और उन्हें सावधानी से मिट्टी से ढंक देती है। मगर का अंडा आकार में मुर्गी के अंडे से तीन गुणा बड़ा होता है।

सत्तर से अस्सी दिन तक अंडे जमीन के भीतर स्वयं ही सेये जाते हैं और उनके अंदर भ्रूण बन जाते हैं। इस दौरान मादा कहीं दूर नहीं जाती। वह अक्सर पानी के बाहर आकर घोंसले के समीप रहती है, खास तौर से रात के समय जब परभक्षी शत्रु इर्द-गिर्द मंडराते रहते
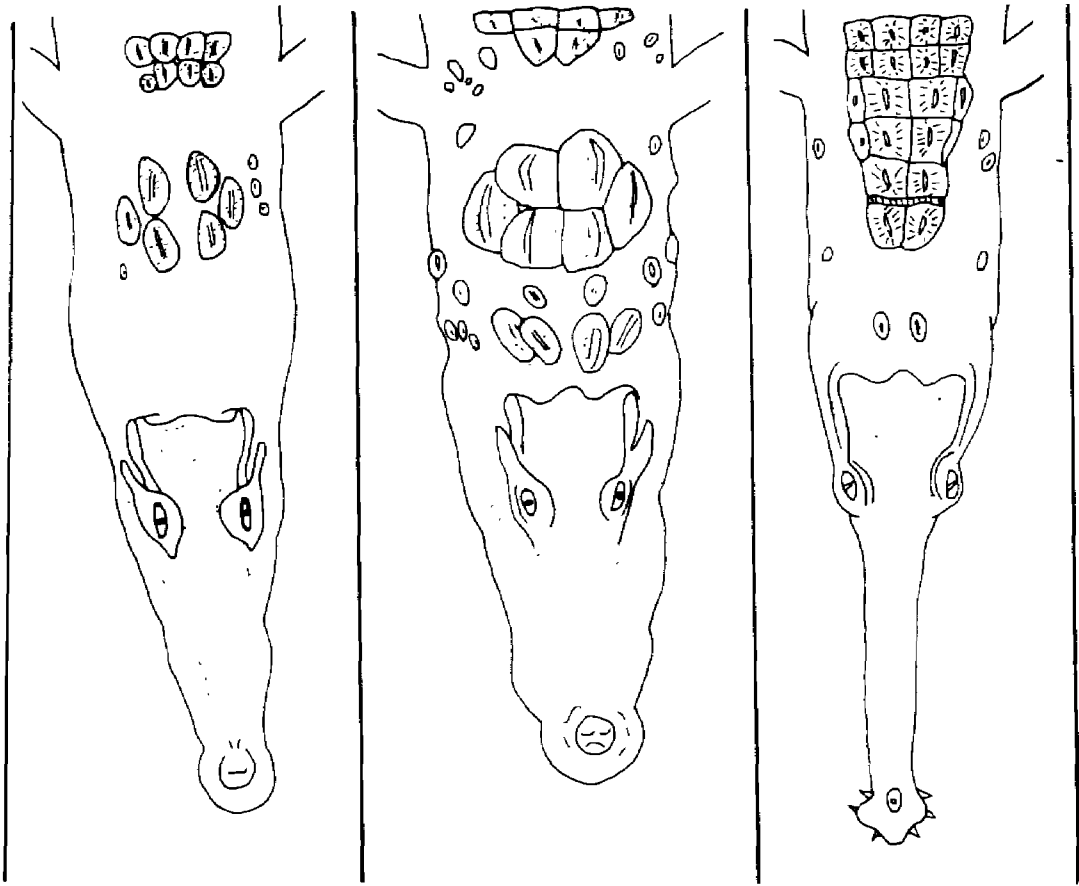
भारत में पाए जाने वाले तीन प्रकार के मगर बड़ी आसानी से पहचाने जा सकते हैं : घड़ियाल (दायीं ओर) में सबसे पतले जबड़े होते हैं। मकर (बीच में) के जबड़े सबसे चौड़े होते हैं। खारे पानी के मगर (बायीं ओर) में मकर की अपेक्षा थूथन अधिक लंबा होता है तथा सिर के पीछे बड़े शल्क नहीं होते।

हैं। इस दौरान वह बहुत आक्रमणकारी हो जाती है और अंडों के समीप आने वाले किसी भी प्राणी का पीछा करके उसे दूर भगा देती है। इस स्वभाव के पीछे कारण भी तो सही है—गोह, गीदड़, जंगली सूअर आदि मगर के इन स्वादिष्ट अंडों को बड़े चाव से खाते हैं।

समस्त सरीसृपों में मगर सबसे अच्छे माता-पिता होते हैं। मादा के साथ-साथ अक्सर नर मगर भी घोंसले की चौकसी करता है। जब अंडों में से बच्चों के निकलने का समय आता है तब वे दोनों मिलकर घोंसला खोलते हैं तथा बच्चों की देखभाल करते हैं। जब अंडों से

प्रणय में रत मकर। नर प्रायः मादा से बड़े होते हैं।

बच्चे बाहर आने ही वाले होते हैं तब शिशु-मगर अंडों के भीतर से ही "अर्क-अर्क-अर्क" का धीमा शोर करने लगते हैं। शीघ्र ही समूचे शिशु-मगरों का समूह-गान आरंभ हो जाता है जिसे मां-बाप यदि घोंसलों के समीप हुए तो सुन लेते हैं। मां-बाप दोनों भूमि खोदकर अंडे बाहर निकाल लेते हैं। बहुत बार कुछ बच्चे पहले ही जन्म ले चुके होते हैं। मगरों के सशक्त जबड़े, जो एक भैंस तक को मारने की शक्ति रखते हैं, इन बच्चों को बड़ी कोमलता से मुंह में उठा लेते हैं और उन्हें पानी में ले जाते हैं। जिन अंडों में से बच्चे न निकले हों, उन्हें मां मामूली से दबाव से मुंह से उठा लेती है और उनमें से बच्चों का जन्म मां के मुंह में ही हो जाता है। प्राचीन समय से ही जो लोग मगर के इस विलक्षण स्वभाव को देखते आए हैं उनके मन में ऐसी धारणा बनी रही है कि मगर अपने ही शिशुओं को खा जाते हैं।

अंडों से निकले बच्चे एक झुंड में इकट्ठा हो जाते हैं जिसे अंग्रेजी में 'पॉड' कहते हैं। ये बच्चे कई-कई महीनों तक मां या बाप या दोनों के साथ रहते हैं। जो बच्चे 35 सें.मी.

मकर की सुरंग
ढूंढ़ते हुए

मकर का खोला गया घोंसला जिसमें लंबे अंडे
दिखाई दे रहे हैं।

(14 इंच) लंबे हो जाते हैं, वे स्वतंत्र रूप में अपना जीवन बिताने निकल पड़ते हैं। इनके अनेक शत्रु होते हैं—बड़ी मछलियों से लेकर पानी में चलने वाले पक्षियों, सांपों तथा स्तनियों तक। वास्तव में अंडे में से जन्म लेने वाले एक मगर की वयस्क बनने तक की संभावना कम ही होती है। प्राकृतिक अवस्था में अपने अधिकांश परभक्षियों से बच सकनें योग्य होने के लिए इन्हें एक मीटर (3½ फुट) लंबा तो होना ही चाहिए। दुर्भाग्य से यही वह अवस्था होती है जब मनुष्य मांस और खाल के लिए इनका शिकार करना शुरू कर देते हैं। संसार की बाईस

अंडों से निकलते बच्चों की देखभाल करता हुआ नर मकर।
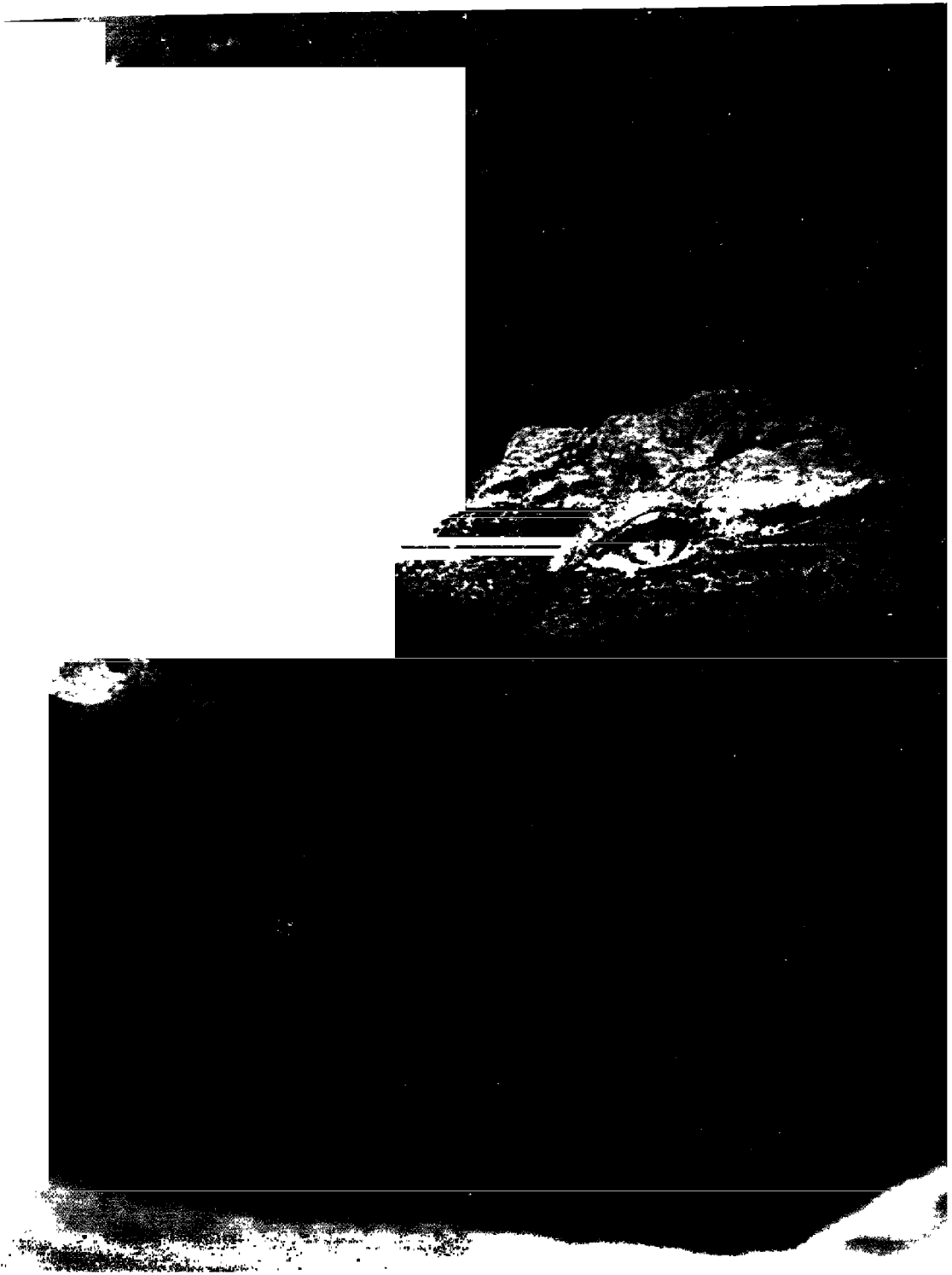
विभिन्न जातियों के मगरों में से अधिकांश को चमड़े के लिए मारा गया तथा उन्हें लगभग विलुप्त प्रायः कर दिया गया है। इनके लिए यह भी दुख की बात रही है कि इनकी खालें संसार में सबसे मजबूत और सुंदर मानी जाती है। इस विषय में और अधिक जानकारी उस खंड में दी जायेगी जिसमें मगर को पालने, इनके प्रजनन और प्रकृति में इनके उपयोग के विषय में बताया जायेगा।

अंडे में से निकलते हुए एक शिशु-मकर को उसका एक जनक धीरे से उठाने का प्रयत्न कर रहा है।
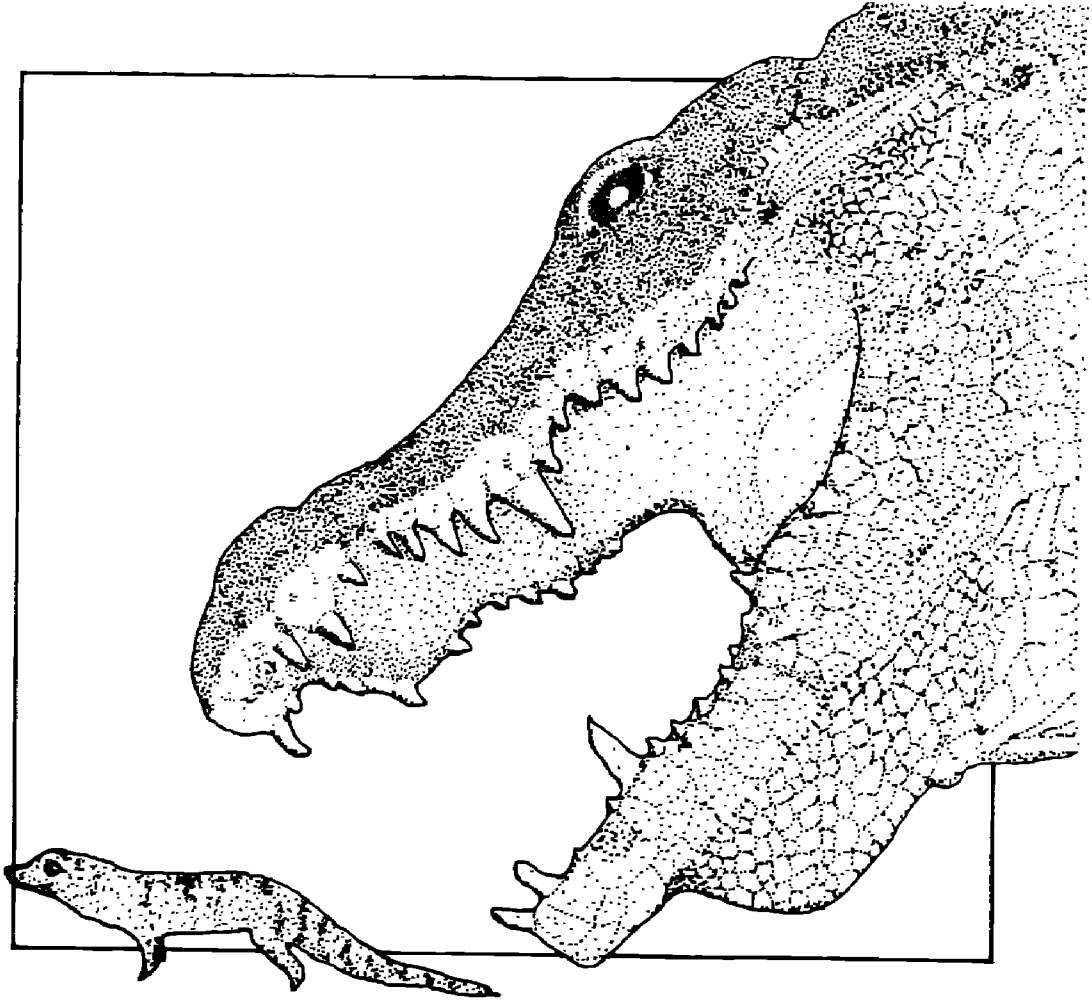
घोंसला बनाने तथा अंडों से बच्चों के निकालने के विषय में हमने जो कुछ भी बताया है वह संसार की अनेक मगर-प्रजातियों पर लागू होता है।

खारे पानी का मगर

इस मगर को इस क्षेत्र में काम करने वाले लोग 'साल्टी' कहते हैं। यह मगरों का राजा है और इस समय पृथ्वी पर पाया जाने वाला सबसे बड़ा सरीसृप है। यह 7 मीटर (23 फुट) तक लंबा होता है और कुछ-एक का वजन एक टन से भी ज्यादा होता है, यानी एक हजार किलोग्राम से भी ज्यादा। डाइनोसौरों के युग के बाद से आज तक कोई ऐसा सरीसृप पृथ्वी पर घूमता-फिरता नहीं पाया गया जो 'साल्टी' मगर जितना बड़ा हो। बीस-फुटे 'साल्टी' मगरों की अनेक कहानियां सुन तो रखी थीं, लेकिन हमने पापुआ न्यू गिनी में ही अंततः ऐसा एक मगर देखा और उसे मापा। यह एक भारी-भरकम नर मगर था जो दुर्भाग्य से फ्लाई-नदी में एक मछली-जाल में फंस गया था। यह पानी में दम घुटने के कारण मर गया था और जब हम अगले दिन वहां पहुंचे तो गांव वाले इसकी खाल उतारने में व्यस्त थे। इस मगर के पेट में एक समूचा 40 किलोग्राम वजन का हिरण था। 'साल्टी' की लंबाई 6.2 मीटर यानी 20 फुट थी।

ऐसा बीस फुटा मगर नियमित रूप से हिरणों तथा अन्य बड़े जानवरों को खाता है। औसत आकार (10-13 फुट या 3-4 मीटर) का 'साल्टी' मगर केकड़े, मछली, मेंढक, तथा अन्य छोटे शिकार पकड़ता है। अन्य मगरों की तरह इन्हें भी अपना शिकार पकड़ने के लिए शांत और चालाक होना पड़ता है। ये छिपे रहते हैं और बहुत धीरे-धीरे चुपके से अपने शिकार के पास आ जाते हैं। फिर अपनी गजब की लचक और फुर्ती का इस्तेमाल करते हुए एकदम शिकार पर टूट पड़ते हैं।

एक बार हमने एक बड़े 'साल्टी' मगर को धीरे-धीरे तालाब के किनारे की ओर जाते हुए देखा और और इस गति में वह अपने शरीर का एक वक्र बनाए हुए चल रहा था। हमने अंदाजा लगा लिया कि वह क्या करने जा रहा है। उसने अपने शरीर के वक्र और तालाब के किनारे के बीच में मछलियों का एक झुंड फांस लिया था। जैसे ही मगर नजदीक आता हुआ बीच की जगह को कम करने लगा, मछलियां बेचैनी के साथ कूदने लगीं। कुछ मछलियां तो उछलकर बाहर तट पर आ पड़ीं, कुछ अन्य मछलियां मगर की पीठ पर गिरीं तो कुछ मगर

को पार कर गयीं। परंतु मगर को अनेक मछलियां मिल ही गयीं, और कुछ तो सीधी मगर के आधे खुले जबड़ों में स्वयं ही तैरते हुए पहुंच गयी थीं। ऐसी भी कहानियां हैं कि 'साल्टी' मगर नदी या तालाब के किनारे किसी ऐसे स्थान पर लगातार कई-कई दिन तक शिकार की प्रतीक्षा करते रहते हैं जहां कोई जानवर पानी पीने आया करता है। ऐसा लगता है कि मगरों में सोचने की शक्ति है और अपना शिकार पकड़ने के लिए वे नयी-नयी तरकीबें निकालते रहते हैं।

खारे पानी का मगर भारत से लेकर पूर्व में आस्ट्रेलिया तक हर जगह पाया जाता है। संसार के सभी मगरों में इस प्रजाति के मगर तथा नील नदी के मगरों के बारे में कहा जाता है कि कभी-कभी वे आदमखोर हो जाते हैं। यह एक दुर्भाग्यपूर्ण सच्चाई है कि कभी-कभी कोई बड़ा मगर आदमी से डरना छोड़ देता है तथा मनुष्यों एवं मवेशियों पर हमला करने लगता है।

इंडोनेशिया की आइरियन जया स्थान पर रॉम ने सावा-एरमा गांव में करीब एक दर्जन प्रत्यक्षदर्शियों का साक्षात्कार किया जिन्होंने एक मगर के घातक आक्रमणों को देख रखा था। इस क्षेत्र में काफी संख्या में 'साल्टी' मगर पाए जाते हैं, लेकिन मुसीबत सिर्फ एक ने कर रखी थी। बाद में इसे पकड़कर मार डाला गया। लेकिन स्थानीय लोगों का पक्का विश्वास था कि यह उस एक देहाती की आत्मा थी जो बहुत पहले मर चुका था।

'साल्टी' मगर खारे पानी के दलदलों में रहते हैं। एक समय था जब ये भारत के समुद्र तट पर काफी अधिक पाये जाते थे। आजकल हमारे देश में ये केवल तीन स्थानों पर पाए जाते हैं, अंडमान और निकोबार द्वीप समूह, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल के मैंग्रोव दलदलों में। यहां ये मनुष्यों पर बहुत ही कम हमला करते हैं। मगरों के इलाके में लोग उसी तरह से खतरे से बचे रहना सीख जाते हैं जिस तरह किसी हाथियों अथवा बाघों के इलाके में। आस्ट्रेलिया में हजारों पर्यटक ऐसी नदियों की सैर करने जाते हैं जिनमें बड़े-बड़े साल्टी मगर रहते हैं। वहां के आदिवासी लोग इन मगरों के साथ हजारों साल से रहते चले आ रहे हैं।

साल्टी मगर भी लगभग उसी प्रकार प्रणय एवं मैथुन करते हैं जैसे कि अन्य मगर। किंतु इनमें अन्य मगरों की अपेक्षा क्षेत्र-स्वामित्व की भावना ज्यादा होती है। प्रजनन काल के दौरान छोटे नरों को बड़ी वयस्क मादाओं अथवा बड़े वयस्क नरों के रास्ते से दूर रहना पड़ता है वरना वे मारे जा सकते हैं।

← खारे पानी के मगर का यह कपाल संसार में शायद सबसे बड़ा रहा होगा। कहते हैं यह मगर 6 मीटर लंबा था।

सबसे बड़ा अंतर घोंसले का है। खारे पानी की मादा मगर पत्तियों और सूखी टहनियों का एक सुंदर और बड़ा सा घोंसला बनाती है। इस घोंसले के भीतर वह चोटी पर एक छेद करती और उसी में से अंदर लगभग 50-80 अंडे देती है। यदि घोंसला पानी के निकट हुआ तो वह निकटतम जल-स्रोत से उसकी सुरक्षा करती है। किंतु साल्टी मगर प्रायः मैंग्रोवों के किनारे पर घोंसला बनाते हैं, जहां मीठे पानी के दलदलों का समुद्र के ज्वारीय मंडल से मेल होता है। इस प्रकार कोई उपयुक्त जल-मार्ग नहीं होता। अतः मादा अपने लिए एक गढ़ा खोद

खारे पानी का मगर अपना शिकार दबोचने के लिए ऊपर को उछल सकता है।

लेती है जिसमें पानी भर जाता है। वह उसमें लोटती हुई पड़ी रहती है ताकि अंडों की निगरानी कर सके। अनुभव से हमने सीख लिया है कि अगर मादा साल्टी अपने घोंसले अथवा बच्चों की सुरक्षा कर रही हो तो उसे जरा भी छेड़ना नहीं चाहिए। मद्रास मगर-बैंक में हम घोंसलों में से अंडों को उठाकर प्रयोगशाला में ले आते हैं। उस समय का दृश्य बड़ा ही उत्तेजनापूर्ण होता है जिसे सांड़-योद्धा, मोटरसाइकिल धावक तथा अन्य कोई भी जोखिम-खिलाड़ी देखकर आनंदित होंगे।

घड़ियाल

घड़ियाल में पहली खास चीज जो आप देखेंगे, वह है इसका असाधारण रूप में लंबा थूथन जिसके किनारे-किनारे दांत बने होते हैं। प्रकृति शायद मछली पकड़ने की इससे अधिक अच्छी युक्ति नहीं बना सकती थी। आप अपने हाथ को चपटा फैलाए पानी में चलाइए। जरा मुश्किल है; है न? अब एक छड़ी को पानी में चलाइए, और आप जान जाएंगे कि घड़ियाल के लंबे पतले जबड़े मछली पकड़ने में इतने कारगर कैसे हो गये। साथ ही घड़ियाल का शरीर संसार के किसी भी अन्य मगर से अधिक चिकना तथा अधिक धारारेखित होता है। निश्चय ही मगरों में ये सबसे ज्यादा जलीय होते हैं तथा सिवा धूप सेंकने अथवा अंडे देने के ये शायद ही कभी पानी से बाहर आते हों। ये मगर की तरह धरती पर नहीं चलते तथा अपना अधिकतर जीवन उत्तर भारत की बड़ी गहरी नदियों में बिताते हैं।

कार्बेट राष्ट्रीय पार्क में रामगंगा नदी के स्वच्छ जल में घड़ियाल को देखने में बड़ा मजा आया। एक शांत जलमग्न आकृति के समीप से कोई मछली निकली नहीं कि घड़ियाल तपाक से बगल को उछलता है और मछली को दबोच लेता है। मगर-बैंक में हम रोज घड़ियाल को खाते देखते हैं और प्रशंसा करते नहीं थकते कि घड़ियाल कितने फुर्तीले और अचूक होते हैं। कई बार हमने मछलियों को उनकी ओर फेंककर देखा है। वे या तो उन्हें बीच हवा में ही पकड़ लेते हैं अथवा पानी की सतह पर गिरते ही दबोच लेते हैं। छोटे घड़ियाल कभी-कभी किसी बड़ी मछली को पकड़े हुए पानी के बाहर तक आ जाते हैं। अनुमानतः ऐसा वे तब करते हैं जब वे इस बड़ी मछली को पूरी तरह संभाल नहीं पाते।

मगर की ही तरह घड़ियाल भी जाड़ों के महीनों में प्रजनन शुरू करते हैं। जब ये लगभग 12-15 वर्ष की आयु में परिपक्व हो जाते हैं तब नर घड़ियाल के थूथन की नोक पर एक बड़ी सी घुंडी बन जाती है जिसे 'घड़ा' कहते हैं। वास्तव में यही एक ऐसा मगर-प्राणी है जिसमें
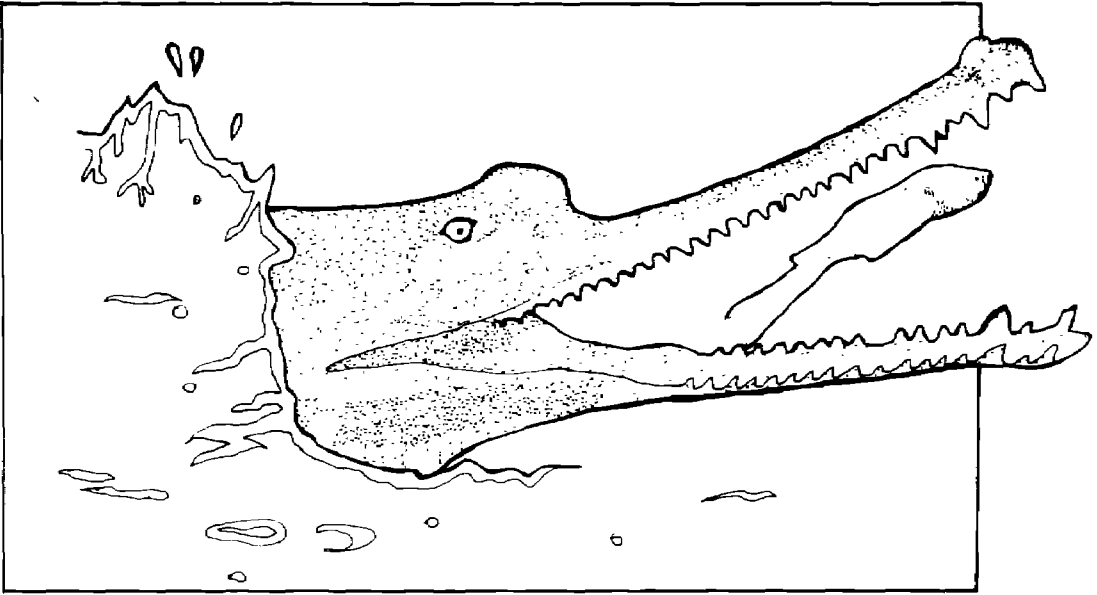
घड़ियाल के संकरे जबड़े मछली को पकड़ने में बड़े कारगर होते हैं, जो इनका प्रमुख भोजन है।

नर और मादा में अंतर दिखाई देता है।

'घड़ा' ठीक नथुनों के ऊपर बना होता है और जब घड़ियाल, मगरों जैसी सामान्य फुंफकार पैदा करता है तो उसकी आवाज इस घड़े के कारण और अधिक बढ़ जाती हैं। यह एक तेज गूंज जैसी हो जाती है जिसका काम कदाचित मादाओं को आकर्षित करने के साथ-साथ उस क्षेत्र के अन्य नरों को दूर रहने का संकेत देना है। घड़ियाल प्रायः शांत प्राणी होते हैं किंतु प्रजनन ऋतु में नर खतरनाक लड़ाई करते हैं तथा मादाएं अपने घोंसलों की सुरक्षा करने में खूंखार हो जाती हैं।

मादाएं मार्च या अप्रैल में 40 से 80 अंडे देती हैं, जिन्हें ये उत्तर भारत की बड़ी नदियों के ऊंचे उठे रेतीले किनारों अथवा गाद में रखती हैं। ये नदियां हैं उड़ीसा की महानदी, राजस्थान और मध्य प्रदेश की चंबल तथा गंगा और यमुना की हिमालय से आने वाली अनेक सहायक नदियां। रेत में पड़े-पड़े अंडों में लगभग सत्तर दिन में बच्चे बन जाते हैं। अब वे अंडे फोड़कर बाहर आने के लिए तैयार होते हैं तब वे अंडे के भीतर से ही आवाज करते हैं। यह मादा

के लिए संकेत होता है कि वह आकर उन्हें खोदकर बाहर निकाले। घड़ियालों को अपने दांतों से भरे जबड़ों में बच्चे उठाए किसी ने नहीं देखा। जान पड़ता है कि सीधे-सीधे मां बच्चों को अपने साथ पीछे-पीछे पानी में ले जाती है।

सभी नवजात मगरों की तरह शिशु घड़ियालों को भी शुरू से ही अपने आप भोजन करना सीखना पड़ता है। वे नदी के किनारे के मछलियों के बड़े-बड़े झुंडों में से छोटी मछलियों को

एक वयस्क घड़ियाल एक बड़ी मछली पकड़े हुए।
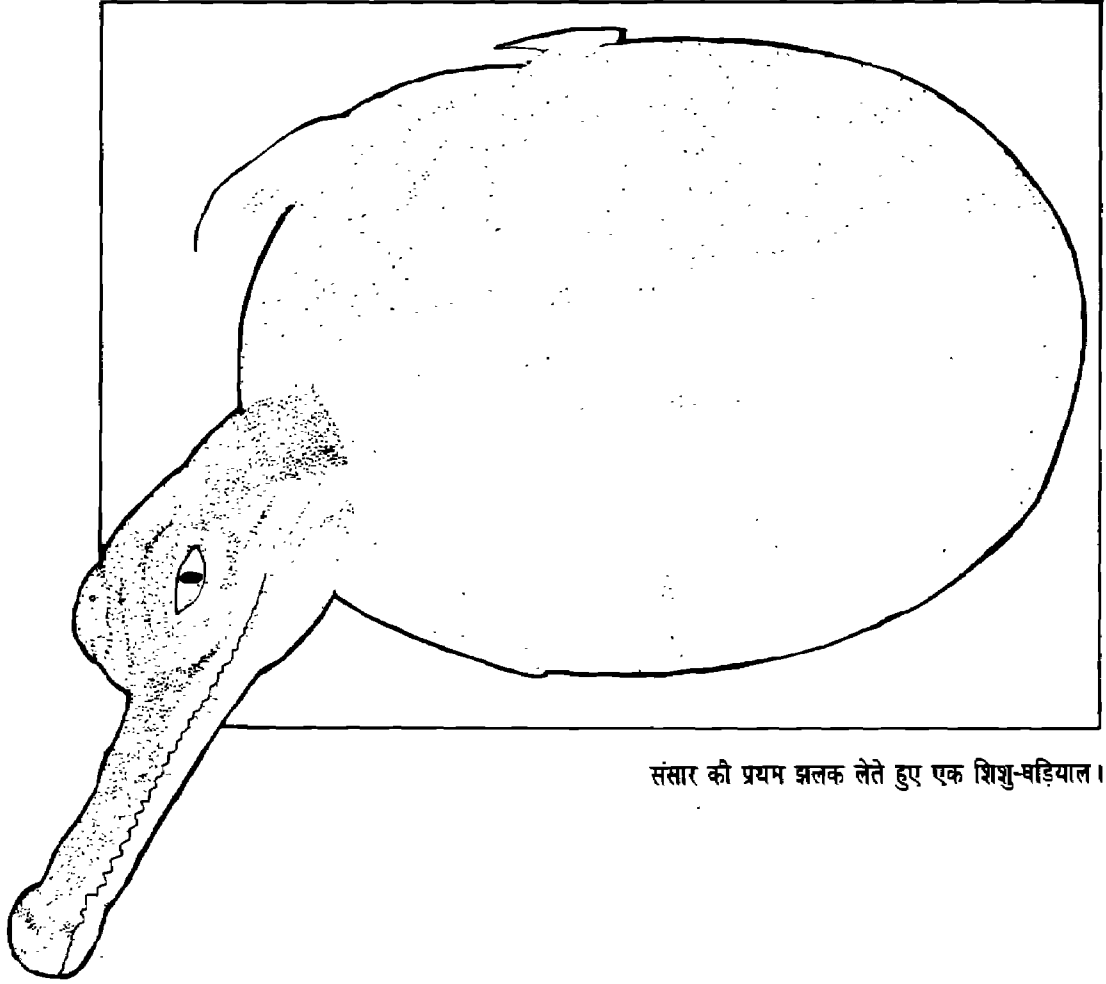
संसार की प्रथम झलक लेते हुए एक शिशु-घड़ियाल।

दबोच लेते हैं। बच्चा-घड़ियालों के थूथन बड़े ही लंबे होते हैं। इसलिए ये कार्टून अथवा किसी अन्य ग्रह से आए हुए प्राणी लगते हैं।

मगर परियोजना

हर किसी ने बाघ परियोजना का नाम सुना है। ऐसा तब हुआ जब विश्व वन्य जीवन कोष ने दुर्लभ भारतीय बाघ को बचाने के लिए दस लाख डालर की मदद की। सन् 1975 में संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन ने एक मगर परियोजना प्रारंभ की ताकि तीन भारतीय

मगर प्रजातियों को विलुप्त होने से बचाने के लिए भारत की सहायता की जा सके।

1970 के दशक के आरंभ में हमने उत्तर भारत में तथा उसके बाद नेपाल एवं बंगलादेश में मगरों का सर्वेक्षण किया। 200 से कम ही संख्या में जंगली घड़ियाल बचे हुए थे। मकर की दशा कुछ बेहतर थी। वे जहां-तहां सारे देश में दो या तीन हज़ार थे। श्रीलंका के द्वीप पर इनकी संख्या अधिक थी, जहां हम चालीस दिन तक मोटरसाइकिलों पर सवार होकर मगर के आवासों को ढूंढ़ते रहे। खारे पानी के मगर की स्थिति जरा खराब थी। भारत में ये कुछ ही सौ की संख्या में बाकी बचे थे और उनके प्राकृतिक आवास तेजी से समाप्त होते जा रहे थे।

खाल के लिए मगरों का हजारों की संख्या में शिकार किया गया है। जनजातियों तथा

मुट्ठी में शिशु-घड़ियाल।

स्थानीय लोगों ने खाने के लिए इनके अंडे इकट्ठे किए। बांध परियोजनाओं तथा वनों के काटे जाने से इनके आवास इतनी तेजी से नष्ट हो रहे थे कि इनके संपूर्ण रूप से विलुप्त हो जाने का ही खतरा पैदा हो गया था।

प्रश्न उठता है कि मगरों को बचाया ही क्यों जाये? जबर्दस्त परभक्षी तथा सफाईगीर होने के नाते मगर जल-प्रणाली को साफ रखते हैं। ये जिन प्राणियों का भोजन करते हैं उनकी आनुवंशिक गुणवत्ता बनाए रखते हैं क्योंकि जो दुर्बल, बीमार तथा चोट खाए हुए जीव होते हैं उन्हें ये खा जाते हैं। जिस तरह बाघ जंगल में वन्य जीवन के पिरामिड के शिखर पर होता है उसी तरह नदियों, झीलों तथा दलदलों में मगर शिखर पर होता है। इनके बिना प्रकृति गंभीर रूप में असंतुलित एवं अस्वस्थ हो जायेगी। उदाहरण के लिए, यदि जलाशयों के सभी मगर मार दिये जायें तो विनाशकारी कैट-फिश उन व्यावसायिक मछुआरों के लिए एक मुसीबत बन जायेगी, जो कार्प और तिलपिया मछलियों को पकड़ते है। कोयम्बटूर के निकट अम्रावती जलाशय में स्वस्थ मकर काफी संख्या में पाये जाते हैं, और वहीं पर व्यावसायिक स्तर पर सबसे अधिक मछली पकड़ी जाती है। उन लोगों के लिए यह एक अच्छी शिक्षा है जो नहीं समझते कि मगर कितना महत्वपूर्ण है।

मगर परियोजना में काम करने वाले जीवविज्ञानियों ने प्राकृतिक क्षेत्र से मगरों के अंडे इकट्ठा किए और फिर सावधानी से उनमें से बच्चों का जन्म कराया गया। अंडों से निकले बच्चों को दो या तीन साल तक पालते-पोसने के बाद उन्हें सुरक्षित आवासों में छोड़ दिया गया। अब दस साल के बाद कई हजार घड़ियालों, मकरों एवं खारे पानी के मगरों को प्राकृतिक क्षेत्रों में छोड़ा गया है तथा उनमें से अनेक प्रजनन भी करने लगे हैं। स्वाभाविक है कि मगरों को उस हर जगह पर नहीं छोड़ा जा सकता जहां किसी समय मगर हुआ करते थे। भारत की जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ी है कि पचास वर्ष पूर्व तक जो स्थान प्राकृतिक थे वे अब पूरी तरह बदल चुके हैं।

आज मकर को तमिलनाडु में अम्रावती जलाशय, गुजरात में गीर के सिंह अभयारण्य की हिरन झील, राजस्थान के रणथम्बोर बाघ अभयारण्य तथा कुछ अन्य स्थानों में देखा जा सकता है। खारे पानी के मगर को जाड़ों के महीनों में उड़ीसा के भिटार कणिका अभयारण्य में तथा अंडमान के कुछ भागों में देखा जा सकता हैं। घड़ियालों को देखने के विशेष स्थान हैं—चम्बल नदी राष्ट्रीय पार्क, उड़ीसा की महानदी अथवा नेपाल का चितवन राष्ट्रीय पार्क। किसी बड़े

कीमती खालों के लिए अत्यधिक शिकार के कारण मगर तथा ऐलिगेटर संसार के अधिकतर भागों में दुर्लभ हो गये हैं।
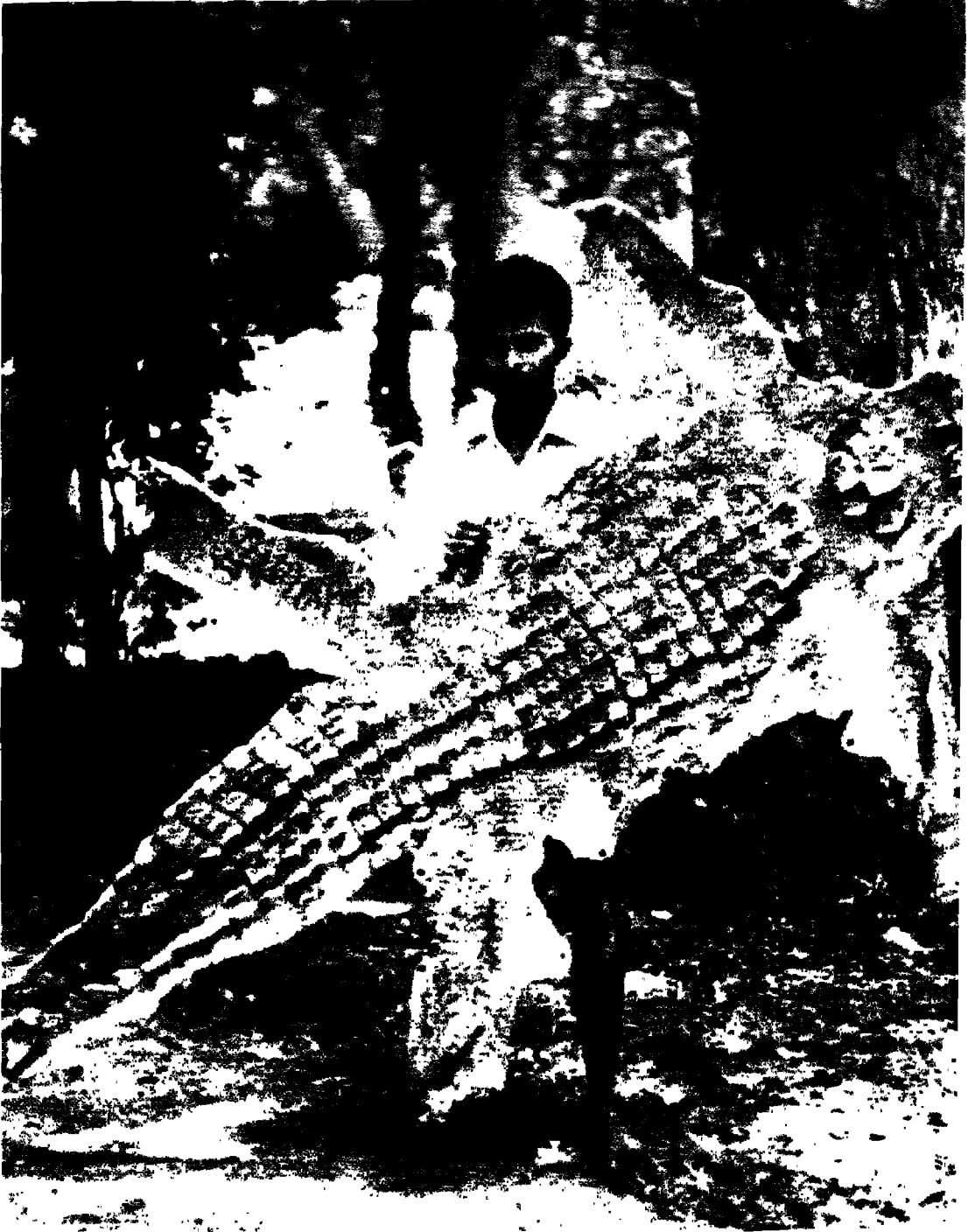
मगर को सवेरे-सवेरे की धूप में अपने विशाल जबड़ों को चौड़ा फैलाए देखना एक बहुत ही बढ़िया दृश्य है, जिसे आप भूल नहीं पायेंगे।

मगरों का अध्ययन

मगरों के सर्वेक्षण इसलिए भी किये जाते हैं ताकि यह जाना जा सके कि प्राकृतिक अवस्था में कितने मगर जिंदा बचे हैं। दूसरे अनेक सरकारी मगर-फार्मों में तथा साथ ही मद्रास मगर-बैंक में भी अध्ययन किये जा रहे हैं।

दक्षिण अमेरिका के इन "चश्मुद्दीन" केमन मगरों में इनकी आंखों के ऊपर एक सुव्यक्त रेखीय उभार बन जाता है जिससे इनका यह विशिष्ट नाम पड़ा।
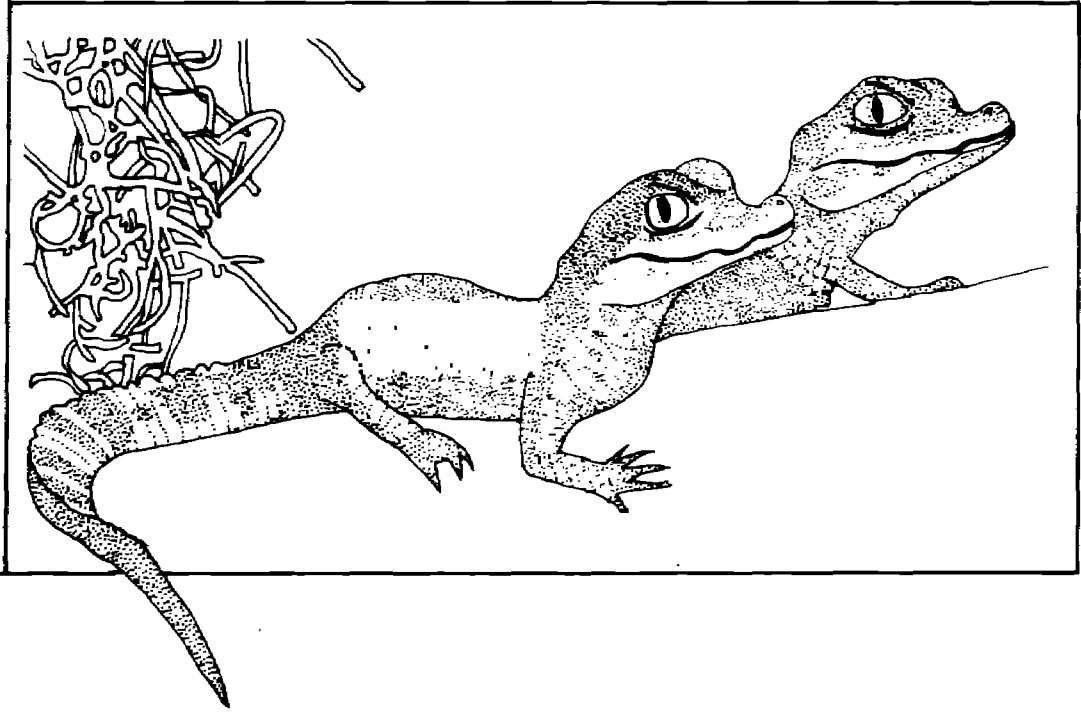
जाल के द्वारा एक बड़े मगर को पकड़ा जा रहा है। →
(छायाचित्रः शेखर दत्तारी)

मद्रास मगर-बैंक में हम स्मिथसोनियन संस्थान तथा नेशनल जिओग्रैफिक सोसाइटी की सहायता से सन् 1985 से अनुसंधान कर रहे हैं। सबसे आश्चर्यजनक खोज यह रही है कि कछुओं के समान ही मगर के भ्रूण में लिंग-निर्धारण तापमान द्वारा होता है। लेकिन

मगर के अंडे में से बच्चा बस निकलने ही वाला है।

कछुओं के विपरीत अगर हम मगर के अंडों को 28° तथा 31° से. के बीच रखकर बच्चे निकालें तो सभी बच्चे मादा होते हैं, तथा अंडों से बाहर आने में उन्हें लगभग सौ दिन लगते हैं। यदि अंडे 32.5° से. पर रखे जायें तो सभी बच्चे नर होते हैं और उन्हें अंडे से बाहर

आने में चौंसठ दिन लगते हैं। 32.5° तथा 33° से. के बीच में रखने पर नर और मादा दोनों ही प्राप्त होते हैं। स्तनियों तथा पक्षियों में संतान का लिंग आनुवंशिकी द्वारा निर्धारित होता है।

नवजात मकर

मगरों के आहार, रोगों तथा इनके व्यवहार पर कई अन्य अध्ययन किये गये हैं। इनसे पता चला है कि जैसे-जैसे वे बढ़ते हैं, उन पर तापमान का क्या प्रभाव पड़ता है। वृद्धि प्रयोगों से पता चला है कि मात्र डेढ़ वर्ष में ही ये बच्चे एक मीटर से अधिक लंबे हो जाते हैं।

दो साल में मकर बढ़कर डेढ़ मीटर लंबा हो सकता है।

मगर-पालन

जैसा कि आप जानते हैं, मनुष्यों ने सदियों से नाना प्रकार के स्तनियों और पक्षियों को पालतू बनाया और उनकी अनेक नस्लें तैयार की हैं, जैसे कि तेजी से बढ़ने वाली मुर्गियों से लेकर कुत्तों की ऐसी नस्लों तक जो तरह-तरह के कामों में उपयोगी हैं। अब मानव ने सबसे पहले सरीसृप-मगर को पालतू बना लिया है। अनेक देशों में, जिनमें आस्ट्रेलिया तथा संयुक्त राज्य

एक मरा हुआ मकर जिसे शायद किसी बड़े मकर ने मार दिया है।

मगर अनुसंधान। मकर की जीभ पर बनी लवण ग्रंथियों का अध्ययन किया जा रहा है।

अमेरिका भी शामिल हैं, हजारों किसान कीमती खालों तथा स्वादिष्ट मांस के लिए मगरों और एलिगेटरों के पालन की व्यवस्था करते हैं।
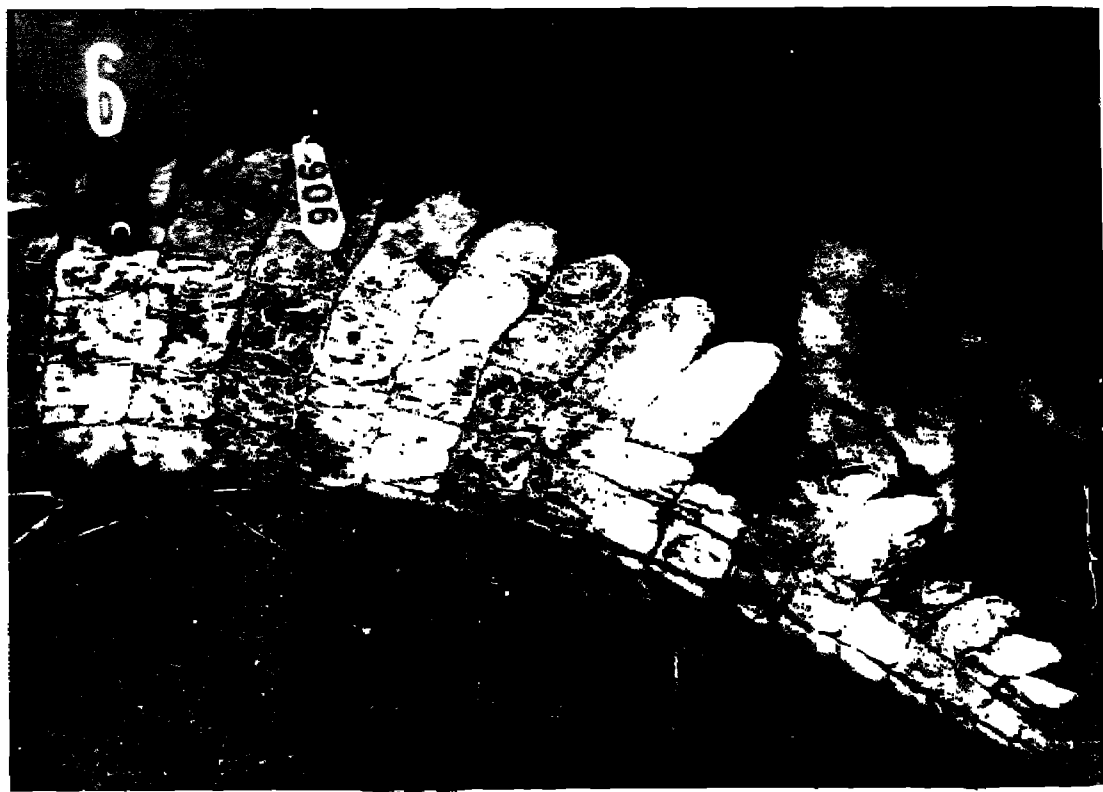
मगर की पूंछ जिसमें संख्या लिखा एक टैग बंधा है, जिससे इसे बाद में पहचाना जा सके।

अमेरिका तथा चीन में पाये जाने वाले ऐलिगेटर बहुत गहरे रंग के होते हैं, जिन पर हल्के से निशान होते हैं। इनके थूयन चौड़े होते हैं। ऐलिगेटर के दांत जबड़ों के दांतगड्ढों में बैठ जाते हैं जिससे वे बाहर से दिखाई नहीं देते। मगर उष्णकटिबंधी देशों में पाये जाते हैं। उनके थूयन इतने चौड़े नहीं होते। उनकी खाल का रंग हल्का होता है, जिस पर गहरे धब्बे होते हैं। उनके सभी दांत एक दूसरे के ऊपर चढ़े होते हैं, जिससे उनकी 'दांतु' खीज नजर आती
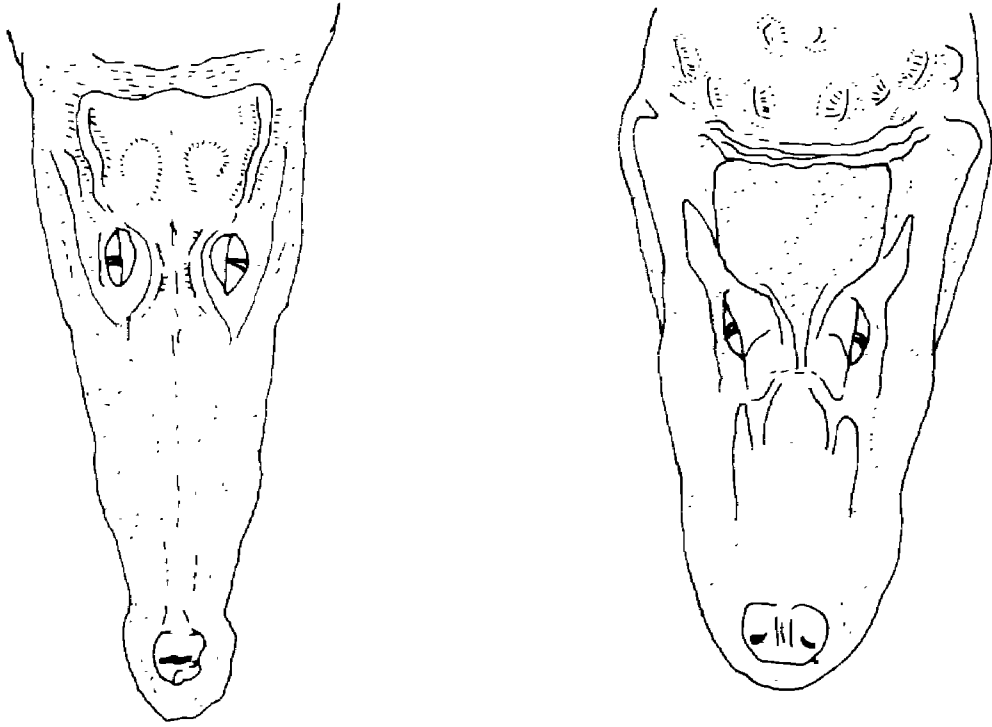
ऐलिगेटर के चौड़े थूथन की एक खारे पानी के मगर के नुकीले थूथन के साथ तुलना।

है। मगरों तथा ऐलिगेटरों को प्रयोगशालाओं में अनेक पीढ़ियों तक रखकर उनमें प्रजनन कराया गया है, और वे अब 'पालतू' बन गये हैं। जहां एक ओर इन जीवों को मारना दुखद है, वहीं जीवविज्ञानियों को ऐसा लगता है कि इन्हें बचाने का एकमात्र तरीका भी यही है। जैसा कि हम जानते हैं भारत तथा अन्य उष्णकटिबंधी देशों में मानव जनसंख्या इतनी तेजी से बढ़ रही है कि वन्य जीवन का बचना कठिन होता जा रहा है। हर वर्ष एक प्रजाति विलुप्त हो जाती है। मगर जैसे जानवरों की, जिनसे लोगों को डर लगता है और जो लोगों को अच्छे नहीं लगते,

बचने की संभावना उस समय तक कम है जब तक कि लोगों को यह विश्वास न दिलाया जाये कि ये प्राणी उनके लिए उपयोगी हैं।

यदि मगरों में लोगों की रुचि पैदा हो जाये तो उन्हें अपने दलदलीय क्षेत्रों के जल मार्गों को बचा सकने का अच्छा साधन मिल जायेगा। यदि मगरों का ठीक से पालन किया जाये तो मगरों की स्वस्थ प्राकृतिक आबादी से हर साल लाखों रुपये के अंडे और बच्चे प्राप्त किए जा सकते हैं। इससे मूल्यवान प्राकृतिक आवास भी बच सकेंगे, जो एक अतिरिक्त लाभ होगा।

तमिलनाडु के मद्रास मगर-बैंक में हर वर्ष मकर के हजारों बच्चे पैदा कराये जाते हैं।

इरुला जनजाति का नटेसन मगर के एक बच्चे के साथ

ऐसा लगता है कि अनेक वन्य प्राणियों का भविष्य इस बात में निहित है कि मांस, खाल और अन्य उत्पादों के लिए उनका इस्तेमाल सावधानीपूर्ण तथा नियंत्रित ढंग से किया जाये। साथ ही, स्वस्थ प्राकृतिक आबादी को प्रकृति में ऐसे ही छोड़ देना चाहिए। वन्य जीवन प्रबंधकों के लिए यह एक नयी चुनौती है। उन्हें यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि कहीं ऐसा न हो कि महान मगरों यानी 'प्रभुत्वशाली सरीसृपों के इन अंतिम सदस्यों' को उनके प्राकृतिक आवास में देखने वाली हमारी पीढ़ी आखिरी हो।

अमेरिकी ऐलिगेटर मुंह खोलकर डराता-गुर्राता हुआ।

मैसर्स श्रीराम ग्राफिक्स, जनकपुरी, नई दिल्ली द्वारा लेजर कंपोज